UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182609
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.01 S53T

Accession No. H2920

Author शास्त्री, चूड़ामणि

Title तुलसी-संग्रह की टीका. 1958

This book should be returned on or before the date last marked below.

तुलसी-संग्रह की टीका

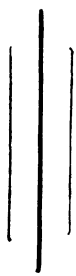

लेखक

बृहद्बल 'संयमी' शास्त्री

साहित्याचार्य एम० ए० M. O. L.

श्याम मोहन गुप्त एम० ए०

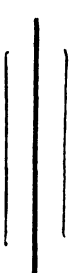

प्रकाशक

रीगल बुक डिपो

नई सड़क दिल्ली-६

प्रकाशक
रामचन्द्र गुप्त
अध्यक्ष—
रीगल बुक डिपो
नई सड़क दिल्ली।

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

मुद्रक
शिवजी मुद्रणालय,
किनारी बाजार दिल्ली।

विषय-सूची

	पृष्ठ
रामचरितमानस	१—६१
गीतावली	६२—६९
कवितावली	७०—७९
विनय-पत्रिका	७९—१०१
दोहावली	१०२—१०७

तुलसी-संग्रह की टीका

रामचरितमानस

अयोध्या काण्ड

(पृष्ठ २७) मंगल सगुन.....अवध चले रघुराजू।

सब को मंगल सूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले (पुरुष के दाहिने और स्त्रियों के बाँये) नेत्र और भुजायें फड़क रही हैं। समाज सहित भरत जी को उत्साह हो रहा है कि श्री रामचन्द्र जी मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जायेगा। जिसके जी में जैसा है, वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेह रूपी मदिरा से छके (प्रेम में मस्त हुए) जा रहे हैं, अङ्ग शिथिल हैं। रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेम वश विह्वल वचन बोल रहे हैं। रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वत शिरोमणि कामद गिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीता समेत दोनों भाई निवास करते हैं। सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी जीवन श्री रामचन्द्र जी की जय हो' ऐसा कह कर दण्डवत् प्रणाम करते हैं। राज-समाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानों श्री रघुनाथ जी अयोध्या को लौट चले हों।

(२७ पृष्ठ) दोहा—भरत प्रेमु.....मलिन जनेहु ॥१॥

भरत जी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेष जी वर्णन नहीं कर सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिए ब्रह्मानन्द।

सकल सनेह.....साधु सनमाने।

सब लोग श्री रामचन्द्र जी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिन भर में) दो ही कोस चल पाये और जल-स्थल का

सुपात देखकर रात को वहीं (बिना खाये पिये ही) रह गये। रात बीतने पर श्री रामचन्द्र जी के प्रेमी भरत जी ने आगे गमन किया। उधर श्री रामचन्द्र जी रात्रि शेष रहते ही जागे। रात को सीता जी ने ऐसा स्वप्न देखा, मानों समाज सहित भरत जी यहाँ आये हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है। सभी लोग मन में उदास, दीन और दुःखी हैं। सासुओं को दूसरी सूरत में देखा। सीता जी का स्वप्न सुनकर श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों में जल भर आया और सबको शोक से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गये और बोले, हे लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई बुरा समाचार आकर सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारि महादेव जी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया।

(पृष्ठ २८) छन्द—सनमानि ·····तेहि अवसर कहे।

देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वंदना करके श्री रामचन्द्र जी बैठ गये और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचन्द्र जी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है, वे मन में विस्मित हो गये, उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे।

सो०—सुनत सुमंगल ·····भरे सनेह जल ॥२॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर मंगल वचन सुनते ही श्रीराम जी के मन में बड़ा आनन्द हुआ। शरीर में पुलकावली छागई और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गये।

बहुरि सोच बस ·····कहउ अनुगामी।

सीतापति श्रीरामचन्द्र जी पुनः सोच के वश हो गये कि भरत के आने का क्या कारण है? फिर एक ने आकर ऐसा कहा, कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है। यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और इधर भाई भरत जी का संकोच भरत जी के स्वभाव को मन में समझ कर तो प्रभु श्री रामचन्द्र जी चित्त को

ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं। तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं, तथा मेरे कहने में हैं अर्थात् आज्ञाकारी हैं। लक्ष्मण जी ने देखा कि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के हृदय में चिन्ता है तो वे समयानुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे। हे स्वामी! मैं आपके बिना ही पूछे कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है, इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब कुछ जानते ही हैं) मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ।

(पृष्ठ २८) दोहा—नाथ सुहृद सुठि.....आपु समान ॥३॥

हे नाथ! आप परम सुहृद (अकारण हित करने वाले), सरल-हृदय तथा शील और स्नेह के भंडार हैं। आपका सभी पर प्रेम है, विश्वास है और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं।

विषई जीव.....राज पबु पाएँ।

परन्तु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है। इस बात को सारा जगत् जानता है। वे भरत भी आज आपका पद (अधिकार-सिंहासन) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा कर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देख कर और यह जानकर कि आप वनवास में अकेले (असहाय) हैं। अपने मन में बुरा विचार करके समाज जोड़ कर, राज्य को निष्कंटक करने के लिए यहां आये हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकार की कुटिलतायें रचकर, सेना बटोर कर दोनों भाई आये हैं। यदि उनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय में) किसे सुहाती? परन्तु भरत को ही व्यर्थ दोष कौन दे? राजपद प्राप्त करने पर सारा जगत् ही पागल हो जाता है।

दोहा—ससि गुरु तिय.....न बेन समान ॥४॥

चन्द्रमा गुरु पत्नीगामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद, दोनों से विमुख हो गया।

(पृष्ठ २९) सहसबाहु सुरनाथ.....धनु हाथ हमारे।

सहस्रबाहु, देवराज इन्द्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया ? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए। हाँ ! भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो आपको असहाय जानकर निरादर किया। परन्तु आज संग्राम में आपका क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझ में विशेष रूप से आ जायगी (अर्थात् इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जायेंगे)। इतना कहते ही लक्ष्मण जी नीतिरस भूल गये और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने फूल उठा (अर्थात् नीति की बात कहते-कहते शरीर में वीररस छा गया) वे प्रभु श्री रामचन्द्र जी के चरणों की वंदना करके, चरणरज को सिर पर रखकर, सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले। हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानियेगा, भरत ने हमें कम नहीं छेड़ा है, आखिर कहाँ तक सहा जाये और मन मार कर रहा जाय। जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है।

दोहा—छत्रि जाति.....धूरि समान ॥५॥

क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं श्रीराम जी (आपका) सेवक हूँ, यह संसार जानता है (फिर भला कैसे सहा जाय ?)। धूल के समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारने पर सिर पर ही चढ़ती है।

उठि कर जोरि.....रन राम दोहाई।

यों कह कर, लक्ष्मण जी ने उठ कर, हाथ जोड़ कर आज्ञा मांगी, मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँध कर, कमर में तरकस कस लिया और धनुष को तान कर, हाथ में बाण लेते हुए कहा, आज मैं आपका सेवक होने का यश प्राप्त करूं और भरत को संग्राम में शिक्षा दूं। आपके निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत—शत्रुघ्न) रण शय्या पर सोवें। अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूंगा, जैसे सिंह हाथियों के झुण्ड को कुचल डालता है और बाज जैसे बटेर को लपेट (दबोच) लेता है। वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई समेत, तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूंगा, यदि शंकर भी

आकर उनकी सहायता करें तो भी मुझे आपकी सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में अवश्य मार डालूँगा।

दोहा—अति सरोष.....भभरि भगान ॥६॥

लक्ष्मण जी को अत्यन्त क्रोध से तमतमाया हुआ देख कर और उनकी सच्ची सौगन्ध सुन कर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल (देवता) घबड़ाकर भागना चाहते हैं।

जगु भय मगन.....सुना न दीसा।

सारा जगत भय में डूब गया। तब लक्ष्मण जी के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई। हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है? परन्तु कोई भी काम हो, उसे उचित-अनुचित खूब समझ-बूझकर किया जाय तो सब अच्छा ही कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं। देव-वाणी सुनकर लक्ष्मण जी सकुचा गये। श्री रामचन्द्र जी तथा सीता जी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया। और कहा, हे तात! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई! राज्य का मद सबसे कठोर मद है। जिन्होंने साधुओं की सभा का सत्संग नहीं किया वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते ही मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत के सदृश उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है और न कहीं देखा ही गया है।

(पृष्ठ ३०) दोहा—भरतहि होई.....बिनसाइ ।७॥

अयोध्या के राजा की तो बात ही क्या है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं हो सकता। क्या कभी काँजी (खटाई) की बूंदों से क्षीर सागर नष्ट हो सकता है (फट सकता है)?

तिमिरु तरुन.....मगन रघुराऊ

अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्न) के सूर्य को निगल जाये। आकाश चाहे बादलों में लीन हो जाये। गौ के खुर जितने जल में अगस्त्य जी डूब जायें और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक सहनशीलता छोड़ दे। मच्छर की फूंक से चाहे सुमेरु उड़ जाय। परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो

सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिता जी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है। हे तात ! गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिलाकर विधाता इस जगत् को रचता है परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस के समान जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया है (अर्थात् दोनों को अलग-अलग कर दिया है)। गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुणरूपी जल को त्याग कर भरत ने अपने यश से जगत् में प्रकाश कर दिया है। भरत जी के गुण शील और स्वभाव को कहते-कहते श्री रघुनाथ जी प्रेम-सागर में मग्न हो गये।

(पृष्ठ ३०) दोहा—सुनि रघुबर.....कृपानिकेतु ॥८॥

श्री रामचन्द्रजी की वाणी सुनकर और भरतजी पर उनका प्रेम देखकर सब देवता उनकी सराहना करने लगे और कहने लगे, कि श्री रामचन्द्रजी के समान, कृपा के धाम प्रभु और कौन हैं ?

जौं न होत.....जाजि तजि ठाऊं ॥९॥

यदि संसार में भरत का जन्म न होता तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता। हे रघुनाथ जी ! कविकुल के लिए अगम, भरत जी के गुणों की कथा आपके सिवाय कौन जान सकता है ? लक्ष्मण जी, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरत जी ने सारे समाज के साथ पवित्र मन्दाकिनी में स्नान किया। फिर सबको नदी के समीप ठहरा कर तथा माता, गुरु और मन्त्री की आज्ञा मांग कर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत जी वहां चले, जहाँ श्री सीता जी और रघुनाथ जी थे। भरत जी अपनी माता कैकेयी की करनी को समझ कर सकुचाते हैं और मन में करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी मेरा नाम सुनकर छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जायें।

दो०—मातु मते महु.....अपनी ओर ॥९॥

मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है। पर वे अपनी ओर समझ कर (अपने विरद और सम्बन्ध को देखकर) मेरे पापों तथा अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे।

चाहे मलिनमन जान कर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, कुछ भी करें। मेरे तो श्रीरामचन्द्र जी कि जूतियाँ ही शरण हैं (रक्षक हैं)। श्रीराम तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब इस दास का ही है। जगत् में यश के पात्र तो चातक और मछली ही हैं जो अपने नेम और प्रेम को सदा बनाये रखने में निपुण हैं ऐसा मन में सोचते हुए भरत जी मार्ग में चले जाते हैं। उनके सब अंग संकोच और प्रेम से शिथिल हो रहे हैं। माता की की हुई बुराई उन्हें लौटाती है, पर धीरज की धुरी को धारण करने वाले भरत जी भक्ति के बल से चले जाते हैं। जब श्री रघुनाथ जी के स्वभाव को समझते हैं तब मार्ग में उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं। उस समय भरत की दशा कैसी है। जैसी जल के प्रभाव में जल के भौंरे की गति होती है। भरत जी का शोच और प्रेम देख कर उस समय निषाद विदेह हो गया (देह की सुध-बुध भूल गया)।

(पृष्ठ ३१) दो०—लगे होन मंगल.....परिनाम विषादु ॥१०॥

मंगल शकुन होने लगे। उन्हे सुनकर और विचार कर निषाद कहने लगा, सोच मिटेगा हर्ष होगा, पर फिर अन्त में दुःख होगा

सेवक वचन सत्य.....आश्रित चित चाऊ।

भरत जी ने सेवक गुह के सब वचन सत्य जाने और आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के वन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरत जी आनन्दित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो। जैसे ईति के भय से दुःखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्य में जाकर सुखी हो जाये। भरत जी की गति (दशा) ठीक उसी प्रकार की हो रही है (अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई—खेतों में बाधा देने वाले, इन ६ उपद्रवों को 'ईति' कहते हैं)। श्री रामचन्द्र जी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है, विवेक उसका राजा है और वैराग्य मन्त्री है। मन (और

सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप. स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) योद्धा है। पर्वत राजधानी है, शान्ति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियां हैं। वह श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और श्री रामचन्द्र जी के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (उत्साह—आनन्द) है (स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना, राज्य के सात अंग हैं)।

(पृष्ठ ३१) दो०—जीति मोहहि.....संपदा सुकाल ॥१॥

मोहरूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेकरूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है।

बन प्रदेस मुनि.....मुद मंगल मूला।

वन रूपी प्रान्तों में जो मुनियों के बहुत से निवास स्थान हैं, वही मानो शहरों, नगरों, गावों और खेड़ों का समूह है बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानों प्रजाओं का समाज है। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सुअर, भैंसे और बैलों को देख कर राजा के साज को सराहते ही बनता है, ये सब आपस का बैर छोड़ कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं, यही मानों चतुरंगिणी सेना है। पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। वे ही मानों वहाँ अनेक प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोतों तथा कोयलों के समूह तथा हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं। भौंरों के समूह गुंजार रहे हैं और मोर नाच रहे हैं मानो उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनन्द और मंगल का मूल बन रहा है।

(पृष्ठ ३२) दो०— राम सैल सोभा.....सिराने नेम ॥१२॥

श्री रामजी के पर्वत की शोभा देखकर भरत जी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है।

तब केवट ऊंच.....सरोज सुहाई।

तब केवट दौड़ कर ऊंचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरत जी से कहने

लगा कि हे नाथ ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं, जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुन्दर विशाल बड़ का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उस के पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं, उसकी घनी छाया सब ऋतुओं में सुख देने वाली है। मानो ब्रह्मा जी ने परम शोभा को एकत्र करके अन्धकार और लालिमामयी राशि भी रच दी है। हे गुसाईं ! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहां श्रीराम की परम कुटी छाई हुई है। वहां तुलसी जी के बहुत से सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीता जी ने और लक्ष्मण जी ने लगाए हैं। इसी बड़ की छाया में सीता जी ने अपने करकमलों से सुन्दर वेदी बनाई है।

दोहा—जहां बैठि.....निगम पुरान ॥१३॥

जहां सुजान श्री रामचन्द्र जी मुनियों के वृन्द समेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणों के सब इतिहास सुनते हैं।

सखा बचन सुनि .....अचर करत को।

सखा के बचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरत जी के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले, उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वती भी सकुचाती है। श्रीरामचन्द्र जी के चरण-चिन्ह देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं, मानों दरिद्र को पारस मिल गया हो। वहां की रज को मस्तक पर रखकर हृदय और नेत्रों में लगाते हैं और श्रीरामचन्द्र जी से मिलने के समान सुख पाते हैं। भरत जी की अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर बन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए प्रेम के वशीभूत हो जाने से सखा निषादराज भी मार्ग भूल गया। तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे। भरत के प्रेम की यह दशा देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वीतल पर भरत का जन्म न होता तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता ?

दोहा—पेमु अमिअ मंदरु बिरहु.....कृपासिन्धु रघुबीर ॥१४॥

हैं। कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने देवता और साधुओं के हित के लिये स्वयं (इस भरत रूपी गहरे समुद्र को अपने विरह रूपी मन्दराचल से) मथकर यह प्रेम रूपी अमृत प्रकट किया है।

चौपाई—सखा समेत मनोहर ..... जरनि हरत हंसि हेरत।

सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन बन की आड़ के कारण लक्ष्मण जी नहीं देख पाये। भरत जी ने प्रभु श्री रामचन्द्र जी के समस्त सुमगलों के धाम और सुन्दर पवित्र आश्रम को देखा। आश्रम में प्रवेष करते ही भरत जी का दुःख और दाह (जलन) मिट गया। मानो योगी को परमार्थ (परमतत्त्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरत जी ने देखा कि लक्ष्मण जी प्रभु के आगे खडे हैं और पूछे हुए बचन प्रेमपूर्वक कह रहे है (पूछी हुई बात का प्रेम पूर्वक उत्तर दे रहे हैं।) सिर पर जटा है, कमर में मुनियों का बल्कल वस्त्र बांधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ में बाण तथा कधे पर धनुष है। वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है, और सीता जी सहित श्री रघुनाथ जी विराजमान हैं। श्री राम जी के बल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किये हुए हैं। श्याम शरीर है। सीता राम जी ऐसे लगते हैं मानो रति और कामदेव ने मुनि का भेष धारण किया हो। श्री राम जी अपने कर-कमलों से धनुष बांण फेर रहे हैं और हँस कर देखते ही भरत जी की जलन हर लेते हैं। (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हँस कर देखलेते हैं उसी को परम आनन्द और शान्ति मिल जाती है।)

(पृष्ठ ३३) दोहा—लसत मंजु मुनि..... सच्चिदानन्दु ॥१५॥

सुन्दर मुनि-मंडली के बीच में सीता जी और रघुकुलचन्द्र श्री रामचन्द्र जी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात् भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हों।

सानुज सखा समेत.....निषग धनु तीरा।

छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरत जी का मन मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। 'हे नाथ! रक्षा कीजिए हे गुसाईं! रक्षा कीजिए।' ऐसा कह कर वे पृथ्वी पर दण्ड की भांति गिर पड़े। प्रेम भरे बचनों से लक्ष्मण जी ने पहिचान लिया कि भरत जी प्रणाम

कर रहे हैं। (वे श्री रामचन्द्र की ओर मुँह किए खड़े थे, भरत जी पीठ-पीछे थे, इससे उन्होंने देखा नहीं) अब इस ओर तो भाई भरत जी का सरस प्रेम और उधर स्वामी श्री रामचन्द्र जी की सेवा की प्रबल परवशता थी। न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक् होकर) मिलते ही बनता है और न प्रेम-वश छोड़ते अर्थात् उपेक्षा करते ही बनता है। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मण जी के चित्त की गति का वर्णन कर सकता है। वे सेवा पर भार रख कर रह गए। (सेवा को ही विशेष महत्वपूर्ण समझकर उसी में लगे रहे) मानों चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी खींच रहा हो। लक्ष्मण जी ने प्रेमसहित पृथ्वी पर मस्तक नवा कर कहा, रघुनाथ जी! भरत जी प्रणाम कर रहे हैं, यह सुनते ही श्री रघुनाथ जी प्रेम में अधीर होकर उठे, कहीं उनका वस्त्र गिरा और कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं वाण।

(पृष्ठ ३३) दोहा—बरबस लिये............सबहि अपान ॥१६॥

कृपानिधान श्री रामचन्द्र जो ने उनको जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। भरत जी और श्रीराम जी के मिलन की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गई।

मिलनि प्रीति............प्रसंसन लागे।

मिलन की प्रीति कैसे वर्णन की जाये, वह तो कवि कुल के लिए कर्म, मन और बाणी तीनों से परे है। दोनों भाई (भरत तथा श्रीराम) तन, बुद्धि चित्त और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम पूर्ण हो रहे हैं। कहिए, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रगट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल होता है, नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है। भरत और श्रीराम जी का प्रेम अगम्य है, जहां ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूं? भला गांडर तांत से भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है? (तालाबों और झीलों में एक प्रकार की घास होती है, उसे 'गांडर कहते हैं)। भरत जी के और रामचन्द्र जी के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देवगुरु बृहस्पति की ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेत और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे।

दोहा—मिलि सप्रेम.....करत प्रनाम ॥१७॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी प्रेम सहित शत्रुघ्न से मिलकर, केवट निषादराज से मिले। प्रणाम करते हुए लक्ष्मण जी से भरत जी बड़े ही प्रेम से मिले।

(पृष्ठ ३४) भेंटेहु लखन.....प्रनामु करि।

तब लक्ष्मण जी बड़ी भारी उमंग के साथ छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषादराज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत, शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने उपस्थित मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनन्दित हुए। छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत प्रेम में उमड़ कर सीता जी के चरण-कमलों की रज, सिर पर धारण कर, बार-बार प्रणाम करने लगे। सीता जी ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने कर-कमल से स्पर्श कर अर्थात् सिर पर हाथ फेर कर उन दोनों को बैठाया। सीता जी ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया, क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें सुध-बुध नहीं है। सीता जी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरत जी निश्चिन्त हो गये और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा। उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है, मन प्रेम से परिपूर्ण है। वह अपनी गति से रहित है अर्थात् सकल्प-विकल्प और चंचलता से शून्य है उस अवसर पर केवट धीरज धर और हाथ जोड़ कर, प्रणाम करके विनती करने लगा।

दोहा—नाथ साथ.....बिकल बियोग ॥१८॥

हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सेनापति और मंत्री आदि सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आये हैं।

सीय सिन्धु.....जग माहीं।

गुरु जी का आगमन सुनकर शील के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी के पास शत्रुघ्न जी को नियुक्त कर, परमधीर, धर्मधुरंधर, दीनदयालु श्रीरामचन्द्रजी उसी समय वेग के साथ चल पड़े। गुरु जी के दर्शन करके लक्ष्मण जी समेत प्रभु श्रीरामचन्द्र जी प्रेम में भर गये और दण्डवत् प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया। और प्रेम में उमड़ कर वे दोनों भाइयों से मिले। फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट निषादराज अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठ जी को दण्डवत् प्रणाम किया

मानो पृथ्वी पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो। श्री रघुनाथ जी की भक्ति सुन्दर मंगलों का मूल है, इस प्रकार कह कर, सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे, संसार में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठ जी के समान महान् कौन है ?

दोहा—जेहि लखि.....प्रताप प्रभाउ ॥१६॥

जिस निषाद को देखकर मुनिराज वशिष्ठ जी लक्ष्मण जी से अधिक आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति श्रीरामचन्द्र जी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।

भरत लोग राम .....सिर धरि खोरी।

दया की खान, सुजान श्री राम जी ने सब लोगों को दुःखी (मिलने के लिए व्याकुल) जाना। तब जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी था, उस उसका उस-उस प्रकार का रुख करते हुए, उन्होंने लक्ष्मण जी सहित पलभर में सबसे मिलकर उनके दुःख और घोर संताप को दूर किया। श्री रामचन्द्र जी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की पृथक्-पृथक् छाया एक साथ ही दीखती है।

समस्त नगर निवासी प्रेम में उमड़ कर, केवट से मिल कर, उसके भाग्य की सराहना करते हैं। श्री रामचन्द्र जी ने सब माताओं को दुःखी देखा मानों सुन्दर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो। सबसे पहिले श्री राम जी कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिर कर काल, कर्म और विधाता के सिर दोष मढ़ कर श्रीराम जी ने उनको सान्त्वना दी।

(पृष्ठ ३५) दोहा—भेंटी रघुवर.....देइअ दोषु ॥२०॥

फिर श्री रघुनाथ जी सब माताओं से मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर संतोष कराया कि हे माता ! जगत् ईश्वर के आधीन है, किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए।

गुरुतियपद.....उतरेउ लोगू।

फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों समेत, जो भरत जी के साथ आई थीं, गुरु जी की पत्नी अरुन्धती जी के चरणों की वन्दना की; और

उन सब का गंगा जी तथा गौरी जी के समान सम्मान किया। वे सब आनन्दित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं। तब दोनों भाई पैर पकड़ कर सुमित्रा जी की गोदी में जा चिपटे, मानों किसी अत्यन्त दरिद्र को सम्पत्ति से भेंट हो गई हो। फिर दोनों भाई माता कौशल्या जी के चरणों में गिर पड़े। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हो गए। अत्यन्त प्रेम से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहे? जैसे गूंगा स्वाद को कैसे बतावे? श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित माता कौशल्या से मिल कर गुरु जी से कहा कि आश्रम पर पधारिये। तत्पश्चात् मुनीश्वर वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल-थल का सुभीता देख-देखकर उतर गए।

दोहा—महिसुर मंत्री...............लखन रघुनाथ ॥२१॥

ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिये हुए, भरत जी, लक्ष्मण जी और श्री रघुनाथ जी पवित्र स्थान को चले।

सीय आई मुनिवर ....महि छाई।

सीता जी ने आकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी के चरणों में प्रणाम किया और मनमाँगी उचित आशीष पाई। फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरु पत्नी अरुन्धती जी से मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता। सीता जी ने सभी के चरणों की अलग-अलग वंदना करके, अपने हृदय को प्रिय लगने वाले आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीता जी ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहम कर अपनी आंखें बन्द कर लीं। (सासुओं की बुरी दशा देखकर) उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियां बधिक के हाथों पड़ गई हों। (मन में सोचने लगीं कि) कुचाली विधाता ने क्या कर डाला? उन्होंने भी सीता जी को देखकर बड़ा दुःख पाया। सोचा, जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है। तब जानकी जी हृदय में धीरज धर कर नील कमल के समान नेत्रों में जल भर कर सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा छा गई।

दोहा—लागि लागि.....भरी सोहागा ।।२२।।

सीता जी सब के पैरों लग-लगकर अत्यन्त प्रेम से मिल रही हैं और अब सासू स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि "तुम सौभाग्यवती बनी रहो।"

विकल सनेह सीय.....काहु न लीन्हा।

सीता जी और सब रानियां स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिये कहा, फिर मुनिनाथ वशिष्ठ जी ने जगत् को माया-पूर्ण बताकर कुछ परमार्थ की बातें कहीं। तत्पश्चात् वशिष्ठ जी ने राजा दशरथ जी के स्वर्गगमन की बात सुनाई, जिसे सुनकर राम ने दुस्सह दुःख पाया और अपने प्रति उनके स्नेह को, उनकी मृत्यु का कारण जानकर धीरधुरंधर श्री रामचन्द्र जी अत्यन्त व्याकुल हो गये। वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मण जी, सीता जी और सब रानियां विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया। मानों राजा आज ही मरे हों। फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने श्री रामजी को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु रामचन्द्र जी ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठ जी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

(पृष्ठ ३६) दोहा—भोरु भए.....सादर कीन्ह ।।२३।।

दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ जी को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने श्रद्धाभक्ति सहित आदर के साथ किया।

करि पितु क्रिया.....करिअ गोसाईं।

वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पाप रूपी अन्धकार के नष्ट करने वाले सूर्यरूप श्री रामजी शुद्ध हुए। जिनका नाम पापरूपी रुई को जलाने वाला अग्नि है और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है, वे नित्य-शुद्ध-बुद्ध भगवान् श्री राम जी शुद्ध हुए। साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से

गंगा जी शुद्ध होती हैं (गंगाजी तो स्वभाव से ही शुद्ध हैं उनमें जिन तीर्थों का आवाहन किया जाता है, उल्टे वे ही गंगाजी के सम्पर्क में आने से शुद्ध हो जाते हैं) इसी प्रकार सच्चिदानन्द रूप श्री राम जी तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध हो गये। जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गये, तब श्री रामचन्द्रजी प्रेम सहित गुरुजी से बोले। हे नाथ ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। कन्द, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मन्त्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल, युग के समान बीत रहा है। अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिये, लौट जाइये। आप यहाँ हैं और राजा स्वर्ग में हैं, अयोध्या सूनी है। मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। गोसांई ! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये।

दो०—धर्म सेतु..... लहहुँ विश्राम ॥२४॥

वशिष्ठ जी ने कहा, हे राम ! तुम धर्म के सेतु (कुल-रक्षक) और दया के धाम हो। तुम भला ऐसा क्यों न कहो ? लोग दुःखी हैं, दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शान्ति लाभ कर लें।

राम बचन सुनि.....छवि केहि पाहीं।

श्रीराम जी के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया, मानों बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो। परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठ जी की श्रेष्ठ कल्याण करने वाली वाणी सुनी तो उस जहाज के लिए मानो हवा अनुकूल हो गई। सब लोग पवित्र पयस्विनी नदी में तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिस के दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगल मूर्ति श्रीरामचन्द्र जी को दण्डवत्-प्रणाम करके, उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं। सब लोग श्री रामचन्द्र जी के पर्वत (कामदगिरि) और वन को देखने जाते हैं, जहां सभी सुख हैं और सभी दुःखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की शीतल, मन्द और सुगन्ध हवायें, तीनों प्रकार के तापों को हर लेती हैं। असंख्य जाति के वृक्ष, लतायें और तृण हैं, तथा अनेक प्रकार के फल, फूल

और पत्ते हैं। सुन्दर शिलायें हैं। वृक्षों की छाया सुख देने वाली है, वन की शोभा किस से वर्णन की जा सकती है।

(पृष्ठ ३७) दो०—सरनि सरोरुह.........बिहंग बहु रंग ॥२५॥

तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और विविध रंगों के पक्षी और पशु वन में बैर रहित होकर विहार कर रहे हैं।

कोल किरात भिल्ल... ... ...चहिय जस राजा।

कोल किरात और भील आदि वन के रहने वाले लोग पवित्र, सुन्दर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुन्दर दोने बनाकर, और उनमें भर भरकर तथा कन्द, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अंटियों) को, सबको विनय और प्रणाम करके, उन चीजों के अलग अलग स्वाद, भेद, गुण और नाम बता कर देते हैं। लोग उनका बहुत मूल्य देते हैं पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्रीराम की दुहाई देते हैं। प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहिचान कर उसका सम्मान करते हैं। (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिये, दाम देकर या वस्तुयें लौटा कर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिये)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। श्रीराम जी की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाये हैं। हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, देखिये, कृपालु श्रीरामचन्द्र जी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं, वैसे ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए।

दो०—यह जिय जानि... ... ...अंकुर लेहु

हृदय में ऐसा जान कर संकोच छोड़ कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमें कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने...............सराहन लागे।

आप प्रिय अतिथि बन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलों की मित्रता तो बस ईंधन, लकड़ी और पत्तों तक है। हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि

हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़-जीव हैं, जीवों के हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं। हमारे दिन और रात पाप करते ही बीतते हैं, तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरता है। हमारे अन्दर स्वप्न में भी कभी धर्म बुद्धि कैसी? यह सब तो श्री रघुनाथ जी के दर्शन का प्रभाव है। जब से प्रभु के चरण-कमल देखे, तब से हमारे दुस्सह दुःख और दोष मिट गये। वनवासियों के वचन सुन कर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गये और उनके भाग्य की सराहना करने लगे।

छन्द—लागे सराहन .....नौका तिरा।

सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा श्री राम जी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पारहे हैं। उन काले-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं, उसे धिक्कारते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह रघुवंश-मणि श्रीरामचन्द्र जी की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया।

सो०—बिहरहिं बन.....पावस प्रथम ॥२७॥

सब लोग प्रतिदिन आनन्दित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं, जैसे पहिली वर्षा के जल से मेंढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)।

(पृष्ठ ३८) पुरजन नारि मगन.....अवध की नाहीं।

अयोध्या पुरी के सभी स्त्री-पुरुष प्रेम में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनको दिन पलक मारने के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुयें थीं, उतने ही वेष बनाकर सीता जी सब सासुओं की आदरपूर्वक एक सी सेवा करती हैं। श्री रामचन्द्र जी के सिवाय इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब माया श्री सीता जी की माया में ही है। सीता जी ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिये। सीता जी समेत दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण) का सरल स्वभाव देख कर, कुटिल रानी कैकेयी अरपेट पछताई। वह पृथ्वी और यमराज से याचना करती है परन्तु धरती

फटकर समा जाने के लिये रास्ता नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता लोक और वेद में प्रसिद्ध है और ज्ञानी लोग भी कहते हैं। कि जो श्रीराम जी से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलता। सब के मन में यह सन्देह हो रहा था कि हे विधाता ! श्री रामचन्द्र जी का अयोध्या जाना होगा या नहीं ?

दो०—निसि न नींद·····सलिल संकोच ॥ २८ ॥

भरत जी को न रात को नींद आती है न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं जैसे तले (नीचे) की कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है।

कीन्हि मातु मिस·····रिषय बुलाई।

भरत जी सोचते हैं कि माता के बहाने काल ने कुचाल की है, जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्रीराम जी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय सूझ नहीं पड़ता। गुरु जी की आज्ञा मानकर तो श्री राम जी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे, परन्तु मुनि वशिष्ठ जी श्रीरामचन्द्र जी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। माता कौशल्या जी के कहने से भी श्रीराम लौट सकते हैं। पर भला श्रीराम जी को जन्म देने वाली माता क्या कभी हठ करेगी। मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है ? उसमें भी समय खराब है, मेरे दिन अच्छे नहीं हैं, और विधाता प्रतिकूल है।

यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिव जी के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है। एक भी युक्ति भरत जी के मन में नहीं ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गई। भरत जी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्री रामचन्द्र जी को सिर नवा कर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठ जी ने उन्हें बुला भेजा।

दोहा—गुरु पद कमल·····सभासद आइ ॥ २९ ॥

भरत जी गुरु के चरण कमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन मन्त्री आदि सभी सभासद् आकर जुट गए।

बोले मुनिबर·····सील सबहीं के।

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ जी समयोचित वचन बोले। हे सभासदो ! हे सुजान भरत ! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्री रामचन्द्र जी, धर्मधुरंधर और स्वतन्त्र भगवान् हैं। वे सत्य-प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। श्रीरामचन्द्र जी का अवतार ही जगत् के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं। नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्रीराम जी के समान यथार्थ कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव सभी कर्म और काल, शेषजी, पृथ्वी और पाताल के राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है, और योग की सिद्धियाँ जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार करके देखो (तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि) श्रीराम जी की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात् श्रीराम जी ही सबके एक मात्र महेश्वर हैं) ।

(पृष्ठ २९) दोहा—राखे राम············समत सोई ।। ३० ।।

अतएव श्रीराम जी की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा, (इस तत्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबकी सम्मत हो वही मिलकर करो।

सब कहुँ सुखद············टेक जो टेकी।

श्रीराम जी का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनन्द का मूल यही एक मार्ग है। अब श्री रघुनाथ जी अयोध्या किस प्रकार चलें ? विचार कर कहो, वही उपाय किया जाये। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी की नीति परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी, पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग विचारशक्ति से रहित हो गये। तब भरत ने सिर झुकाकर हाथ जोड़े और कहा, सूर्यवंश में एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हो गए हैं, सभी के जन्म के कारण माता-पिता होते हैं और शुभाशुभ कर्मों के फलों को विधाता देते हैं। आपका आशीर्वाद ही एक ऐसा है जो दुःखों का दमन करके समस्त कल्याणों को सजा देता है, यह जगत् जानता है। हे स्वामी ! आप वही हैं, जिन्होंने विधाता की गति को भी रोक दिया। आपने जो निश्चय कर दिया। उसे कौन टाल सकता है ?

दोहा—बूझिअ मोहित.....उमगा अनुरागु ॥३१॥

अब आप मुझ से उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा दुर्भाग्य है। भरत जी के प्रेमपूर्ण बचनों को सुनकर गुरु जी के हृदय में प्रेम उमड़ आया।

तात बात फुरि.....न मोर सुपासू।

वह बोले, हे तात! बात सत्य है पर है राम जी की कृपा से ही। राम-विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं। अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) बन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्रीरामचन्द्र को लौटा लाओ। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके समस्त अंग परमानन्द से परिपूर्ण हो गये। उन के मन प्रसन्न हो गये, शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथ जी उठे हों और श्रीरामचन्द्र जी राजा हो गये हों। अन्य लोगों को तो इस में लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई। परन्तु रानियों को दुःख तथा सुख समान) ही थ (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही) यह समझ कर वे सब रोने लगीं। भरत जी कहने लगे—मुनि ने जो कुछ कहा, वह करने से जगत् भर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं) मैं जन्म भर वन में बास करूँगा, मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

(३२) दोहा—अन्तरजामी रामु.....वचन प्रवान।

श्रीरामचन्द्र जी और सीता जी, हृदय की बात जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)।

भरत वचन सुनि.....गुण ग्यान निधाना।

भरत जी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठ जी विदेह हो गए (किसी को अपनी देह की सुधि न रही)। भरत जी की महान् महिमा समुद्र है। मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है। वह उस समुद्र के पार जाना चाहता है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूंढे, परन्तु (उसे पार जाने का साधन) नाव जहाज या

बेड़ा आदि साधन कुछ भी नहीं पाती। भरत जी को बड़ाई और कौन करेगा ? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है ? मुनि वशिष्ठ जी के अन्तरात्मा को भरत जी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्री राम जी के पास आये। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गये। श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले ' हे सर्वज्ञ ! हे सुजान ! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम ! सुनिये।

(पृष्ठ ४०) दोहा—सब के उर अन्तर.....कहिअ उपाउ ॥३३॥

आप सब के हृदय के भीतर बसते हैं, और सब के भले बुरे भाव को जानते हैं। जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइये।

आरत कहहिं विचारि.....सुभ सिव साखी।

दुःखी लोग कभी विचार कर नहीं कहते, जुआरी को अपना ही दाव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर श्री रघुनाथ जी कहने लगे, हे नाथ ! उपाय तो आप के ही हाथ है। आप का रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कह कर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सब का हित है। पहिले तो जो मुझे आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ा कर करूं। फिर हे गुसांई, आप जिसको जैसा कहेंगे, वह सब तरह से सेवा में लग जायेगा (आपकी आज्ञा का पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठ जी कहने लगे, हे राम ! तुमने सच कहा, पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जायेगा, शिव जी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा।

दोहा—भरत विनय.....निगम निचोरि ॥३४॥

पहिले भरत की विनती आदर पूर्वक सुन लीजिए। फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत राजनीति और वेदों का सार निकाल कर सो ही कीजिये।

गुरु अनुराग भरत.....रहे अरगाई ।

भरत जी पर गुरु जी का स्नेह देखकर श्री रामचन्द्र जी के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। भरत जी को धर्म-धुरन्धर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर, श्री राम जी गुरु की आज्ञा के अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले। हे नाथ ! आपकी सौगन्ध तथा पिता जी के चरणों की दुहाई है, मैं सत्य कहता हूँ कि विश्व भर में भरत के समान भाई कोई हुआ ही नहीं। जो लोग गुरु के चरण-कमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से भी) और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी भाग्यशाली होते हैं। फिर जिस पर आप जैसे गुरु का स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन वर्णन कर सकता है ? छोटा भाई जान कर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है (फिर भी मैं तो यही कहूंगा कि) भरत जी कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कह कर श्री रामचन्द्र जी चुप हो गये।

(पृष्ठ ४१) दोहा—तब मुनि बोले ....हृदय की बात ॥३५॥

तब मुनि जी भरत से बोले, हे तात ! सब संकोच त्याग कर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो।

सुनि मुनि बचन.....जितावहिं मोही ।

मुनि के वचन सुनकर और श्री रामचन्द्र जी का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भर पेट अपने अनुकूल जानकर—सारा बोझ अपने ही ऊपर समझ कर भरत जी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे। शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गये। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आगई। वे बोले, मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निभा दिया (जो कुछ मैं कह सकता था, वह उन्होंने ही कह दिया), इससे अधिक मैं क्या कहूँ ? अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी अप्रसन्नता नहीं देखी। बचपन से ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भली भांति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं।

दोहा—मँहू सनेह.....पियासे नैन ।

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला । प्रेम के प्यासे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए ।

विधि न सकेऊ.....नीक परिनामू ।

परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका, उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अन्तर डाल दिया । यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है ? (जिसे दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है) । माता नीच है और मैं सदाचारी और साधू हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ दुराचारों के समान है । क्या कोदों (घास का चावल) की बाले उत्तम धान पैदा कर सकती हैं ? स्वप्न में भी किसी का लेशमात्र भी दोष नहीं है । मेरा अभाग्य ही अथाह सागर है, मैंने अपने पापों का परिणाम समझ बिना ही माता को कटु वचन कह कर व्यर्थ ही जलाया । मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया । (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता) एक ही प्रकार भले ही मेरा भला है । वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्री राम जी मेरे स्वामी हैं । इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है ।

दोहा—साधु सभां गुर.....मुनि रघुराउ ।।३७।।

साधुओं की समाज में गुरु जी और स्वामी जी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्यभाव से कहता हूँ, यह प्रेम है या प्रपंच ? झूठ है या सच ? इसे सर्वज्ञ मुनि वशिष्ठ जी और अन्तर्यामी श्री रामचन्द्र जी ही जानते हैं ।

भूपति मरन.....तामस तीछी ।

प्रेम के प्रण को निभा कर पिता जी का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है । मातायें व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं । अवधपुरी के नरनारी दुस्सह ताप से जल रहे हैं । मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ । यह सुन और समझ कर मैंने सब दुःख सहा है । श्री राम जी, लक्ष्मण जी तथा सीता जी के साथ मुनियों का सा वेष धारण कर, बिना जूते पहने पदल ही वन को चले गये, यह सुनकर शंकर जी साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गये) । फिर निषादराज का

प्रेम देखकर भी, इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रह कर सभी कुछ सहन करावेगा। जिनको देखकर रास्ते की सर्पिणी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं।

(पृष्ठ ४२) दोहा—तेइ रघुनन्दनु.....सहावइ काहि ॥३८॥

वे ही श्री राम लक्ष्मण और सीता जिनको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर, दैव दुस्सह दुःख और किसे सहावेगा?

सुनि अति बिकल.....सभा नहिं सेई।

अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये। सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो। तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी ऐतिहासिक कथाये कह कर भरत जी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुद बन को खिलाने वाले चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी ने उचित बचन कहा कि हे तात! तुम अपने हृदय मे व्यर्थ ही ग्लानि करते हो, जीव की गति को ईश्वर के आधीन जानो। मेरे मत मे (भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी तथा पाताल इन) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं।

हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख-यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूख दोष देते हैं, जिन्होने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दोहा—मिटहिं पाप.....नामु तुम्हार ॥३९॥

हे भरत तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और सब अमंगलों के समूह मिट जायेंगे तथा इस लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख होगा।

कहहु सुभाउ.....सोइ कीन्हा।

हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिव जी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही साक्षी रह रही है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क मत करो। वैर, प्रेम

छिपाये नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले वधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहिचानते हैं, फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है। हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह से जानता हूँ, क्या करूँ, मन में बड़ी दुविधा है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य की रक्षा की और प्रेम-प्रण के लिये शरीर छोड़ दिया। उनके वचन को मेटते मन में दुःख होता है। उस से भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरु जी ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ।

(पृष्ठ ४३) दोहा—मनु प्रसन्न करि.....सुखी समाजु ॥४०॥

तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य-प्रतिज्ञ, रघुकुल श्रेष्ठ, श्री राम जी का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

सुरगन सहित.....रामबस करतहि।

देव गणों सहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है, कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन ही मन श्रीराम जी की शरण में गये। फिर वे विचार करके आपस में कहने लगे कि श्रीरामचन्द्र तो भक्त की भक्ति के वश में हैं। अम्बरीष और दुर्वासा की घटना याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गये। पहिले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लाद ने ही नृसिंह भगवान् को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लग कर और सिर धुन कर कहते हैं कि इस बार देवताओं का काम भरत जी के हाथ है। हे देवताओं! और कोई उपाय नहीं दिखाई देता। श्रीराम जी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते (अर्थात् उनके भक्त की कोई सेवा करता है तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं) अतएव अपने गुण और शील से श्रीराम जी को वश में करने वाले भरत जी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो।

दोहा—सुनि सुर मत.....चरन अनुराग ।।४१।।

देवताओं का मत सुन कर देव गुरु वृहस्पति जी ने कहा, अच्छा विचार किया। तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरत जी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है।

सीतापति सेवक.....कीन्ह नहिं थोरा।

श्री राम जी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत जी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी। हे देवराज इन्द्र! भरत जी का प्रभाव तो देखो, श्री रघुनाथ जी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्ण रूप से वश में हैं। हे देवताओ! भरत जी को श्रीरामचन्द्र जी की परछाईं जानकर मन स्थिर करो। डर की कोई बात नहीं है। देवगुरु वृहस्पति जी और देवताओं की सम्मति तथा उनका सोच सुन कर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को संकोच हुआ। भरत जी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सर जाना और वे हृदय में अनेक प्रकार के अनुमान करने लगे। सब तरह से विचार करके अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपन प्रण छोड़ कर मेरा प्रण रक्खा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात मुझ पर अत्यन्त स्नेह और अनुग्रह किया है)

दो०—कीन्ह अनुग्रह.....जुग हाथ ।।४२।।

श्री जानकीनाथ जी ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त कृपा की है। तत्पश्चात् भरत जी दोनों कर-कमलों को जोड़ कर प्रणाम करके बोले।

कहौं कहावौं..... ...काहुहि काऊ

हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अन्तर्यामी! अब मैं अधिक क्या कहूं! और क्या कहाऊं! गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कलिन पीड़ा मिट गई। मैं मिथ्या-भय से ही डर गया था, मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल, और काल की कठोरता, इन सब ने मिल कर, पैर अड़ा कर मुझे नष्ट कर दिया था, परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना प्रण निबाहा। यह आपकी कोई

नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है। सारा जगत बुरा करने वाला हो, किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही अनुकूल हों तो फिर कहिये, अन्य किसकी भलाई से भला हो सकता है! हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सन्मुख (अनुकूल) है और न विमुख (प्रतिकूल)।

(पृष्ठ ४४) दो०—जाइ निकट पहिचानि.....भल पोच ॥४३॥

उस कल्प वृक्ष को पहिचान कर जो उसके पास जाये, तो उसकी छाया ही सारी चिन्ताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे, जगत् में सभी उससे माँगने ही मन चाही वस्तु पाते हैं।

लखि सब बिधि.....जौं मनु माना।

गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी संदेह नहीं रहा। हे दया की खान! अब वही कीजिये, जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ न हो। जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है, कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़ कर स्वामी की सेवा ही करे। हे नाथ! आपके लौटाने में सभी का स्वार्थ है और परमार्थ का सा है। समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का शृंगार है। हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है; सो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए।

दोहा—सानुज पठइअ..... .....चलौं मैं साथ ॥४४॥

छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और अयोध्या लौट कर सबको सनाथ कीजिए। नहीं तो (किसी तरह भी यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ।

नतरु जाहि बन.....हित एक उपाऊ।

अथवा हम तीनों भाई बन चले जायें और हे श्री राम जी! आप श्री सीता जी समेत अयोध्या को लौट जाइए। हे दयासागर! जिस प्रकार से

प्रभु का मन प्रसन्न हो, वही कीजिए। हे देव ! आपने सारा भार मुझ पर रख दिया, पर मुझ में न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। दुःखी मनुष्य के मन में विवेक नहीं होता। स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह सागर हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ), किन्तु आप स्नेहवश साधु कह कर मुझे सराहते हैं। हे कृपालु ! अब तो मुझे वही मत अच्छा लगता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पाये। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्यभाव से कहता हूँ, जगत् के कल्याण के लिए यही एक उपाय है।

दोहा—प्रभु प्रसन्न मन.....अनट अनरेब ॥४५॥

प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा कर पालन करेंगे। और सब उपद्रव और उलझनें मिट जायेंगी,

(पृष्ठ ४५) भरत बचन सुचि.....सो भयउ गोसाईं।

भरत जी के पवित्र बचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कह कर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाये। अयोध्यावासी असमंजस में पड़ गये (देखें अब श्रीराम जी क्या कहते हैं)। तपस्वी तथा बनवासी लोग (श्रीराम जी के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम प्रसन्न हुए। किन्तु संकोची श्रीराम जी चुप ही रह गये। प्रभु की यह स्थिति देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनक जी के दूत आये, यह सुनकर मुनि वशिष्ट जी ने तुरन्त बुलवा लिया। उन्होंने प्रणाम करके श्रीराम जी को देखा, उनका मुनियों का सा वेश देख कर वे अत्यन्त दुःखी हुए। मुनि-श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल-समाचार कहो। यह सुन कर, सकुचा कर, पृथ्वी पर मस्तक झुका कर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़ कर बोले हे स्वामी ! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं ! कुशलता का कारण हो गया।

दो०—नाहिं त कोसल.....भयउ अनाथ ॥४६॥

नहीं तो हे नाथ। कुशल-क्षेम तो सब कोशलनाथ दशरथ जी के साथ ही चली गई। उनके चले जाने से तो सारा जगत् ही अनाथ हो गया, किन्तु

मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ होगये।

कोशलपति गति सुनि.....न होई लखाऊ।

दशरथ का मरण सुनकर जनकपुरवासी सभी लोग शोकवश बावले से होगए। (सुध-बुध भूल गये) उस समय जिन्होंने विदेह को शोकमग्न देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह नाम सत्य है (क्योंकि देहाभिमान से शून्य पुरुष को शोक कैसा)।

रानी की कुचाल सुनकर राजा जनक जी को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि के बिना सांप को नहीं सूझता। फिर भरत जी को राज्य और श्री रामचन्द्र को बनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनक जी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। राजा ने विद्वानों तथा मन्त्रियों के समाज से पूछा, कि विचार कर कहिए, इस समय क्या करना उचित है? अयोध्या की दशा समझ कर और दोनों प्रकार से असमंजस जान कर 'चलिये या रहिये' किसी ने कुछ नहीं कहा। (जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धैर्य धारण करके हृदय में विचार कर चार चतुर गुप्तचर अयोध्या भेजे, और उन से कह दिया, कि तुम लोग श्री राम जी के प्रति सद्भाव या दुर्भाव का यथार्थ पता लगा कर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पावे।

दो०—गये अवधचर..... : चले तिरहुति ॥४७॥

गुप्तचर अयोध्या गये और भरत जी का ढंग जानकर और उनके काम देखकर जैसे ही भरत जी चित्रकूट को चले, वे मिथिला को चल दिए।

बूतन्ह आइ भरत.....विदा चर कीन्हे।

गुप्तचरों ने आकर जनक जी की सभा में भरत जी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मंत्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गये। फिर जनक जी ने धीरज धर कर और भरत जी की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियों (ऊंट सवारों) को बुलाया। घर, नगर और देश में रक्षकों को रखकर घोड़े, हाथी और रथ आदि बहुत सी सवारियां सजवाईं। ये घुघड़िया मुहूर्त साध कर उसी समय चल पड़े। राजा ने मार्ग में कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज ही सवेरे प्रयागराज में स्नान करके चले हैं जब सब लोग यमुना जी उतरने लगे, तब

हे नाथ ! हमें खबर लेने को भेजा। दूतों ने ऐसा कह कर पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने कोई छः-सात भीलों को साथ लेकर दूतों को तुरन्त विदा कर दिया।

(पृष्ठ ४६) दोहा—सुनत जनक..... सुरराज ॥४८॥

जनक जी का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया। श्रीराम जी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेष रूप से चिन्ता में पड़ गये।

गरइ गलानि.....जग जीवन लाहू।

कुटिल कैकेयी मन ही मन पश्चात्ताप से घुनी जाती है, किस से कहे, और किसको दोष दे ? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि (अच्छा हुआ, जनक जी के आने से) चार दिन और ठहराना हो गया। इस प्रकार वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातः काल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेश जी, गौरी जी, महादेव जी, और सूर्य भगवान् को पूजा करते हैं। फिर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के चरणों की वन्दना करके, दोनों हाथ जोड़ कर, आँचल पसार कर विनती करते हैं कि श्री राम जी राजा हों, जानकी जी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनन्द की सीमा होकर फिर समाज सहित सुखपूर्वक बसे और श्री राम जी भरत जी को युवराज बनायें। हे देव ! इस सुख रूपी अमृत से सींच कर सब किसी को जगत् में जीने का लाभ दीजिये।

दोहा—गुरु समाज.....सबु कोउ ॥४९॥

गुरु-समाज और भाइयों समेत श्रीराम जी का राज्य अवधपुरी में हो और श्रीराम जी के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरे, सब कोई यही माँगते हैं।

सुनि सनेहमय.....जानत करि मोरे।

अयोध्यावासियों की प्रेम भरी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्रीराम जी को पुलकित होकर प्रणाम करते हैं। ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्रीराम जी का दर्शन

प्राप्त करते हैं। श्रीरामचन्द्र जी सावधानी के साथ सबका सम्मान करते हैं और सभी कृपानिधान श्रीरामचन्द्र जी की सराहना करते हैं श्रीरामचन्द्र जी का बचपन से ही यह स्वभाव है कि वे प्रेम को पहिचान कर नीति का पालन करते हैं। श्रीराम जी शील और संकोच के समुद्र हैं। वे सुन्दर मुख (सबके अनुकूल रहने वाले), सुन्दर नेत्र वाले (सबको कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखने वाले) और सरल-स्वभाव हैं। श्रीराम जी के गुण-समूहों को कहते-कहते सब लोग प्रेम में भर गये और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत् में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूंजी वाले थोड़े ही हैं जिन्हें श्रीराम जी अपना समझते हैं।

(पृष्ठ ४७) दो– प्रेम मगन तेहि.....कमल दिनेसु ॥५०॥

उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं, इतने में ही मिथिलाधिपति जनक जी को आते हुए सुनकर, सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्रीरामचन्द्र जी सभा सहित आदरपूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए।

भाइ सचिव गुर.....समेत समाजहि।

भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्रीराम जी आगे-आगे चले। जनक जी ने ज्यों ही सर्वश्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड दिया अर्थात् पैदल चलना शुरू कर दिया। श्रीराम जी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को मार्ग की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है, जहाँ श्रीराम जी तथा जानकी जी हैं। बिना मन के शरीर के सुख दुख: की सुध किस को हो? जनक जी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट आये देखकर सब प्रेम में भर गये और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे। जनक जी (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वन्दना करने लगे और श्रीरामचन्द्र जी ने (शतानन्द आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर भाइयों समेत श्रीराम जी राजा जनक जी से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को ले चले।

दोहा –आश्रम सागर.....जाहि रघुनाथ ॥५१॥

श्रीराम जी का आश्रम शान्तरस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है।

जनक जी की सेना (समाज) मानो करुणा (करुणरस) की नदी है जिसे श्री रामचन्द्र जी (उस आश्रमरूपी शान्तरस के समुद्र में मिलाने के लिये) लिए जा रहे हैं।

बोरति ग्यान बिराग.....सिंधु अगवाही।

यह करुणा की नदी (इतनी बढ़ी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्यरूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं और सोच की लंबी श्वासें (आहें) ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं जो धैर्यरूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं। भयंकर शोक ही उस नदी की तीव्र धारा है, भय और भ्रम (मोह) उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान् मल्लाह है, विद्या ही बड़ी नाव है। परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं (उस विद्या का उपयोग नहीं कर सकते हैं) किसी को उसकी समझ ही नहीं आती है। वन में विचरने वाले बिचारे कोल किरात ही यात्री हैं जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गये हैं। यह करुणा नदी जब आश्रमरूपी सागर में जाकर मिली तो मानो वह सागर अकुला उठा (खौल उठा)। दोनों असह्य शोक से व्याकुल हो गये किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथ जी के रूप गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक-सागर में डुबकी लगा रहे हैं।

छन्द—अवगाहि सोक.....सरित स्नेह की।

शोक सागर में डुबकी लगाते हुए, स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदास जी कहते हैं, कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनियों में कोई भी समर्थ नहीं है कि जो उस समय राजा जनक की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके। (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)।

(५२) सो०—किए अमित.....बिदेह सन।

यहाँ तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अनेक उपदेश दिए और वशिष्ठजी ने विदेह से कहा, हे राजन्! आप धैर्य धारण कीजिए।

जासु ग्यान रवि.....कौन विचारु ।

जिन राजा जनक का ज्ञानरूपी सूर्य, आवागमनरूपी रात्रि का नाश कर देता है और जिनकी वचनरूपी किरणें मुनिरूपी कमलों को खिला देती हैं। उनके मोह और ममता उनके समीप आ सकते हैं ? यह तो श्री राम जी के प्रेम की महिमा है। (अर्थात् राजा जनक की वह दशा श्री राम जी के अलौकिक प्रेम के कारण हुई, लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं। जो लौकिक मोह ममता को पार कर चुके हैं, उन पर भी श्री राम जी का प्रेम अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता)। विषयी, साधक और ज्ञानी पुरुष, संसार में ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताये हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्रीराम जी के स्नेह से सरस रहता है, साधुओं की सभा मे उसी का बड़ा आदर होता है। श्रीराम जी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे मल्लाह के बिना जहाज। वशिष्ठ जी ने जनक जी को बहुत प्रकार से समझाया, तदनन्तर सब लोगों ने श्रीराम जी के घाट पर स्नान किया। स्त्री पुरुष सब शोक से पूर्ण थे, वह दिन बिना जल के ही बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही, किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु-पक्षी और हिरणों तक ने कुछ आहार नहीं किया। तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या किया जाये ?

(५३) दो०—दोउ समाज.....कुसगात ।

निमिराज जनक जी और रघुराज रामचन्द्र जी तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन प्रातः स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं।

जे महिसुर दसरथ..... चले नहाना ।

जो दशरथ जी की नगरी अयोध्या के रहने वाले और जो मिथिलापति जनक जी के नगर जनकपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे तथा सूर्य वंश के गुरु वशिष्ठ जी तथा जनक जी के पुरोहित शतानन्द जी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था। वे सब धर्म, नीति, वैराग्य तथा ज्ञान पूर्ण अनेक उपदेश देने लगे। विश्वामित्र जी ने पुरानी कथायें (इतिहास) कह कह कर सारी सभा को सुन्दर वाणी से समझाया। तब श्रीराम जी ने श्री विश्वामित्र जी से कहा, हे नाथ ! कल सब लोग बिना जल पिये ही

रह गये थे (अब कुछ आहार करना चाहिये)। विश्वामित्र जी ने कहा कि श्रीराम जी उचित ही कह रहे हैं। ढाई पहर आज भी बीत गया। विश्वामित्र जी का रुख देखकर तिरहुत के राजा जनक जी ने कहा, यहाँ अन्न लाना उचित नहीं है, राजा का सुन्दर कथन सबको अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले।

(५४) दो०—तेहि अवसर .....कांवरि भार।

उसी समय अनेक प्रकार के बहुत से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बँहगियों और बोझों में भर भरकर कोल-किरात लोग ले आये।

कामद भे गिरि .....सुधा समाना।

श्रीरामचन्द्र जी की कृपा से सब पर्वत मन चाही वस्तु देने वाले हो गये। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानों आनन्द और प्रेम उमड़ रहा है। बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गये। पक्षी पशु और भौंरे अनुकूल बोलने लगे, उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह था। सब को सुख देने वाला शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चल रही थी। वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजी का अतिथि सत्कार कर रही हो। तब जनकपुर वासी सब लोग नहा-नहाकर श्रीरामचन्द्र जी, जनक जी और मुनि की आज्ञा पाकर सुन्दर वृक्षों को देख देखकर, प्रेम मे भर कर जहाँ तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुन्दर और अमृत के समान स्वादिष्ट अनेक प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कन्द—

(५५) दो० —सादर सब कहँ .....लगे करन फरहार।

श्री राम जी के गुरु वशिष्ठ जी ने सब के पास बोझे भर भर कर आदरपूर्वक भेजे, तब वे पितर, देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे।

एहि विधि बासर.....जनिअहि जाता।

इस प्रकार चार दिन बीत गये। श्री रामचन्द्र जी को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि श्रीरामजी के बिना लौटना अच्छा नहीं है। श्रीरामजी के साथ वन में रहना करोड़ों देवलोकों के निवास के समान सुखदायक है। श्री लक्ष्मण जी, श्रीराम जी और श्री जानकीजी को छोड़

कर जिसे घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं। जब दैव सब के अनुकूल हो तभी श्री रामजी के पास वन में निवास हो सकता है। मन्दाकिनी का तीनों समय स्नान तथा आनन्द तथा मंगलों की माला रूप श्री राम का दर्शन है। श्री राम जी के पर्वत कामदनाथ, वन और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कन्द, मूल, फलों का भोजन। चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान बीत जायेंगे। बीतते मालूम ही न होंगे।

(५६) दो०—एहि सुख.....चरन अनुरागु।

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजों का श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम है।

एहि विधि सकल.....पबि टांकी।

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेम भरे वचन सुनते ही, श्रोताओं के मनों को हर लेते हैं। उसी समय सीता जी की माता सुनयना जी की भेजी हुई दासियाँ, (कौशल्या आदि के मिलने का) सुन्दर अवसर देखकर आईं। उन से यह सुनकर कि सीता की सब सासुयें इस समय फुर्सत में हैं, जनक जी का रनिवास उनसे मिलने आया। कौशल्या ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और यथोचित आसन लाकर दिये। दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं। और नेत्रों में शोक और प्रेम के आँसू हैं। सब अपने पैरों के नाखूनों से ज़मीन कुरेदने और सोचने लगीं। सभी श्री राम जी के प्रेम की मूर्ति सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत से वेष धारण करके दुःख हर रही हो, सीता जी की माता सुनयना जी ने कहा, विधाता की बुद्धि बड़ी-टेढ़ी है,जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को वज्र की टांकी से फोड़ रहा है। अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं, उन पर विपत्ति पर विपत्ति ढा रहा है।

(५७) दो०—सुनिअ सुधा.....सकृत मराल।

अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही दिखाई देते हैं। हंस तो एक मानसरोवर में ही हैं।

सुनी ससोच......अवधपति रानी ।

यह सुनकर देवी सुमित्रा जी शोक के स थ कहने लगीं । विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है । जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है । विधाता की बुद्धि बालकों के खल के समान भोली है । कौशल्या जी ने कहा, किसी का दोष नहीं है । दुःख, सुख, हानि-लाभ सब कर्म के आधीन हैं, कर्म की गति बड़ी कठिन है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभाशुभ फलों का दाता है । ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अमृत और विष के भी सिर पर है (ये सब उसी के आधीन हैं) हे देवि ! मोहवश सोच करना व्यथ है, विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है । महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय में याद करके जो चिन्ता करती है. वह तो हे सखी ! हम अपने ही हित की हानि देखकर स्वार्थवश करती हैं । सीता जी की माता ने कहा, आपका कथन उत्तम और सत्य है । आप पुण्यात्माओं के सीमारूप अवधपति की ही तो रानी हैं (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगीं)?

(५८) **दो०—लखन रामु.........कर सोच ।**

कौशल्या जी ने दुःखभरे हृदय से कहा, श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वन में जायें, इस का परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं । मुझे तो भरत की चिन्ता है ।

ईस प्रसाद असीस.........बिकल सब रानी ।

ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे चारों पुत्र और चारों वधुएं गंगाजल के समान पवित्र हैं । हे सखी ! मैंने कभी श्रीराम की सौगन्ध नहीं की, सो आज श्री राम की शपथ करके सत्यभाव से कहती हूँ । भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी सकुचाती है । हिचकती है । सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं ? मैं भरत को सदा कुल का दीपक समझती हूँ । महाराज ने भी बार-बार मुझे यही कहा था । सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न जौहरी के मिलने पर ही पहिचाना जाता है । वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही हो जाती है, किन्तु आज मेरा ऐसा कहना

भी अनुचित है। शोक और स्नेह में विवेक कम हो जाता है। (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ) कौशल्या जी की गंगा जी के समान पवित्र करने वाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं।

(५९) दो०—कौशल्या कह.....सकइ उपदेसि।

कौशल्या जी ने फिर धीरज धरकर कहा, हे देवी मिथिलेश्वरी ! सुनिये, ज्ञान के भण्डार श्री जनक जी की प्रिया आप हैं, भला आप को कौन उपदेश दे सकता है ?

रानी राम सन.....उठी सप्रीति।

हे रानी ! आप अवसर पाकर राजा को अपनी ओर से जहाँ तक हो सके, समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मण को घर रख लिया जाए और भरत वन को जायें। यदि यह राय राजा के मन में ठीक जँच जाये, तो भलीभांति खूब विचार कर ऐसा यत्न करें, मुझे भरत का बहुत ही सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है, उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती। (यह डर लगता है, कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाये) कौशल्या जी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुणारस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी सी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गये। सारा रनिवास देखकर चकित (स्तब्ध) सा हो गया। सुमित्रा जी ने धीरज धर के कहा, हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर श्री राम जी की माता कौशल्या जी प्रेमपूर्वक बोल उठीं।

(६०) दो०—बेगि पाउ धारिअ.....मिथिलेस सहाय।

और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं, अब आप शीघ्र डेरा में जाइये, हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं अथवा मिथिलेश्वर जनक जी सहायक हैं।

लखि स्नेह सुनि.....सुनिभाषा।

कौशल्या जी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनक जी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिये और कहा हे देवि ! आप राजा दशरथ की रानी और श्री राम जी की माता हैं। आपको ऐसी नम्रता उचित ही है। प्रभु अपने नीच जनों का भी आदर करते हैं, अग्नि

घुए और पर्वत तृण को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो महादेव-पार्वती जी हैं। आप जैसा सहायक जगत् में कौन है ? दीपक सूर्य की सहायता करने वाला होकर कहीं शोभा पा सकता है ? श्री रामचन्द्रजी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे। देवता, नाग और मनुष्य सब श्रीरामचन्द्र जी की भुजाओं के बल पर अपने अपने लोकों में सुखपूर्वक रहेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले ही से कह रक्खा है। हे देवि ! मुनि का कथन व्यर्थ नहीं हो सकता।

(६१) दो०—असकहि पग.....सुआपसु पाइ।

ऐसा कह कर बड़े प्रेम से, पैरों में पड़कर, सीता जी को भेजने के लिए विनती की। और सुन्दर आज्ञा पाकर; सीता समेत सीता की माता जी डेरे को चलीं।

प्रिय परिजनहि.....रघुवर सनेह की।

जानकी जी अपने प्यारे कुटुम्बियों से, जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकी जी को तपस्विनी के वेष में देखकर सभी शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गये। जानकी जी श्री राम के गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीता जी को देखा। जनक जी ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी (अतिथि) सीता जी को हृदय से लगा लिया। उनके हृदय में वात्सल्य प्रेम का सागर उमड़ पड़ा, राजा का मन मानो प्रयाग तीर्थ हो गया। उस सागर के अन्दर उन्होंने आदि शक्ति सीता जी के अलौकिक स्नेह रूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए देखा, उस पर श्री राम जी का प्रेम रूपी बालक सुशोभित हो रहा है। जनक जी का ज्ञान रूपी चिरंजीवी मार्कण्डेय मुनि व्याकुल होकर डूबते २ मानो उस श्री राम प्रेम रूपी बालक का सहारा पाकर बच गया, वस्तुतः ज्ञानी विदेह की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है, यह तो श्री राम जी के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान् ज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)।

(६२) दो०—सिय पितु मातु.....सुधरयु विचारि।

पिता-माता के प्रेम के मारे सीता जी ऐसी विकल हो गईं कि अपने को सँभाल न सकीं। परन्तु परमधीरज वाली पृथ्वी की कन्या सीता जी ने समय

और सुन्दर धर्म का विचार कर धैर्य धारण किया।

तापस वेश जनक.....सीलु सुभाऊ।

सीता जी को तपस्विनी वेष में देखकर जनक जी को विशेष प्रेम और संतोष हुआ, उन्होंने कहा, बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये। तेरे निर्मल यश से सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कहते हैं। तेरी कीर्ति रूपी नदी, गंगा को भी जीत कर (जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है) करोड़ों ब्रह्माण्डों में वह चली है। गंगा जी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर को बड़ा तीर्थ बनाया है, पर तेरी इस कीर्ति नदी ने तो अनेक सन्त-समाजरूपी तीर्थ स्थान बना दिये हैं। पिता जनक जी ने स्नेह से सुन्दर बाणी कही, परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीता जी मानों संकोच में समा गईं। पिता माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हित भरी सुन्दर शिक्षा और आशीष दी। सीता जी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु मन में संकुचा रही हैं कि रात में (सासुओ की सेवा छोड़ कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयना जी ने जानकी का रुख देख कर राजा जनक को संकेत कर दिया, तब दोनों अपने हृदय में सीता जी के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे।

(६३) दो०—बार बार मिलि.....सुबानि सयानि।

राजा रानी ने बार बार मिलकर और हृदय से लगा कर तथा सम्मान करके सीता जी को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुन्दर वाणी में भरत जी की दशा का वर्णन किया।

सुनि भूपाल भरत.....निदर सुधाहू।

सोने में सुगन्ध और समुद्र से निकली हुई सुधा में चन्द्रमा के सार अमृत के समान भरत जी का व्यवहार सुनकर राजा ने प्रेम विह्वल होकर अपने प्रेमाश्रुओं के जल से भरे नेत्रों को मूंद लिया (वे भरत जी के प्रेम में मानों ध्यानस्थ हो गये)। वे शरीर से पुलकित हो गये और मन में आनन्दित होकर भरत जी के सुन्दर यश की सराहना करने लगे। वे बोले, हे सुमुखि ! हे सुनयनी ! सावधान होकर सुनो ! भरत जी की कथा संसार के बन्धनों से छुड़ाने वाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार इन तीनों विषयों में अपनी

बुद्धि के अनुसार मेरी थोड़ी बहुत गति है। अर्थात् इनके विषय में मैं कुछ जानता हूँ। वह मेरी बुद्धि भरत जी की महिमा को तो क्या वर्णन करें, छल करके भी उसकी छाया तक को नहीं छू पाती। ब्रह्मा जी, गणेशजी, शेष जी, महादेवजी, सरस्वती जी, कवि, ज्ञानी, पंडित और बुद्धिमान् सभी को भरत जी के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देने वाले हैं। और पवित्रता में गंगा जी का तथा मधुरता में अमृत का भी तिरस्कार करने वाले हैं।

(६४) दो०—**निरवधि गुन.....मति सकुचानि।**

भरत जी असीम गुण सम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं। भरत जी के समान बस भरत जी ही हैं। ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के समान कह सकते हैं? इसलिए उन्हें (किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई।

अगम सबहि.....भरत मत येहू।

हे श्रेष्ठ वर्ण वाली! भरत जी की महिमा का वर्णन करना सभी के लिए वैसे ही कठिन है जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरत जी की अपरिमित महिमा को एक श्री रामचन्द्र जी ही जानते हैं। किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। इस प्रकार प्रेम पूर्वक भरत जी के प्रभाव का वर्णन करके, फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा, लक्ष्मण जी लौट जायें और भरत जी वन जायें, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है। परन्तु हे देवि! भरत जी और श्री रामचन्द्र जी का प्रेम और एक दूसरे पर विश्वास बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि श्री रामचन्द्र जी समता की सीमा हैं। (श्री रामचन्द्र के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरत जी ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। श्री रामचन्द्र जी के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरत जी का बस यही एक मात्र सिद्धांत जान पड़ता है।

(६५) दो०—**भोरेहुँ भरत.....भूप बिलखाइ।**

राजा ने बिलख कर (प्रेम से गद गद होकर) कहा, भरत जी भूलकर भी

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

राम भरत गुन.....राज समाजा।

श्री राम जी और भरत जी के गुणों की प्रेम-पूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति पत्नी को रात पलक के समान बीत गई। प्रातः काल दोनों राज-समाज जागे। और नहा नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे। श्री राम जी स्नान करके गुरु वशिष्ठ जी के पास गये और चरणों की वन्दना करके और उनका रुख पाकर बोले, हे नाथ! भरत, अवधपुरवासी तथा मातायें सब शोक से व्याकुल और बनवास से दुखी हैं। मिथिलापति राजा जनक जी को भी समाज सहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिए, आप ही के साथ सभी का हित है। ऐसा कहकर श्री राम जी अत्यन्त सकुचा गये। उनका शील, स्वभाव देख कर मुनि वशिष्ठ जी पुलकित हो गये। उन्हों ने कहा, हे राम! तुम्हारे बिना घर बार आदि सम्पूर्ण सुखों के साज दोनों राज समाजों को नरक के समान हैं।

(६६) दो०—प्रान प्रान के.....विधिवाम।

हे राम! तुम प्राणों के भी प्राण, आत्मा के भी आत्मा और सुख के भी सुख हो। हे तात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हें विधाता विपरीत है।

सो सुखकरमु.....सहितहित होई।

जहाँ श्री राम जी के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म, धर्म जल जाये। जिस में श्री राम प्रेम की प्रधानता नहीं है वह योग कुयोग है। और वह ज्ञान अज्ञान है। तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और जो सुखी हैं, वे तुम्हीं से सुखी हैं। जिस किसी के जी में जो कुछ है,तुम सब जानते हो, आपकी आज्ञा सभी के सिर पर है, आप को सभी की स्थिति अच्छी तरह मालूम है। अतः आप आश्रम को पधारिये। इतना कह मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गये। तब श्रीराम जी प्रणाम करके चले गये। और ऋषि वशिष्ठ जी धीरज धरकर जनक जी के पास आये। गुरु जी ने श्री रामचन्द्र जी के शील और स्नेह से युक्त स्वभाव से ही सुन्दर वचन राजा जनक जी को सुनाये। और कहा, हे महा-

राज ! अब वही कीजिए जिसमें सब का धर्म सहित हित हो।

(६७) दो०—ग्याननिधान······एहिकाल।

हे राजन् ! तुम ज्ञान के भंडार, सुजान, पवित्र और धर्म में धीर हो, इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में कौन समर्थ है।

सुनिमुनि बचन······रघुवीर सुभाऊ।

मुनि वशिष्ठ जी के वचन सुनकर जनक जी प्रेम में मग्न हो गये। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया। वे प्रेम से शिथिल हो गये। और मन में विचार करने लगे कि हम यहाँ आये यह अच्छा नहीं किया। राजा दशरथ जी ने श्री राम को वन जाने के लिए कहा और स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को सच्चा कर दिखाया। अर्थात् प्राण त्याग दिये। परन्तु हम अब इन्हें वन से सघन वन में भेजकर अपने विवेक की बड़ाई में आनन्दित हो कर। लौटेंगे (हमें जरा भी मोह नही है, हम श्री राम को वन में छोड़कर चले आये, दशरथ जी की तरह मरे नही)। [illegible] मुनि और ब्राह्मण यह सब सुनकर और देखकर प्रेम वश बहुत ही व्याकुल हो गये। समय का विचार करके राजा जनक जी धीरज धर कर समाज सहित भरत जी के पास चले। भरत ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। और समयानुकूल अच्छे आसन दिये। तिरहुतराज जनक जी कहने लगे, हे तात भरत ! तुमको श्री राम जी का स्वभाव मालूम ही है

(६८) दो०—राम सत्य.........व्रतआयसु देहु।

श्रीरामचन्द्र जी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सब का शील और स्नेह रखने वाले हैं, इसलिये वे संकोचवश संकट सह रहे हैं। अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाये।

सुनि तन पुलकि ....न प्रबोधू।

भरत जी यह सुनकर पुलकित शरीर हो, नेत्रों में जलभर कर अत्यन्त धीरज धर के बोले, हे प्रभो ? आप हमारे पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और कुलगुरु वशिष्ठ जी के समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं हैं। विश्वा-मित्र आदि मुनियों और मंत्रियों का समाज है और आज के दिन, ज्ञान के सागर आप भी उपस्थित हैं, हे स्वामी ! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञा-

राम ! मेरा मत तो यह है, कि तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें। यह सुनकर दोनों हाथ जोड़ कर श्री राम जी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले। आपके और मिथिलेश्वर जनक जी के विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकार से अनुचित है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा होगी मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी ?

(७२) दो०—**राम शपथ ..... ऊतर देत।**

श्री रामचन्द्र जी की शपथ सुन कर सभा समेत मुनि और जनक जी सकुचा गये। किसी से उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरत जी का मुँह ताक रहे हैं।

सभा सकुच बस ..... मंजुमराली।

भरत जी ने सभा को संकोच के वश देखा, भरत जी ने बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने उमड़ते हुए प्रेम को संभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्य जी ने रोका था। शोक रूपी हिरण्याक्ष ने बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया जो विमल गुण समूह रूपी जगत् को उत्पन्न करने वाली थी। भरत जी के विवेक रूपी विशाल वराह (भगवान् ने) (शोक रूपी हिरण्याक्ष को नष्ट कर) विना परिश्रम के उसका उद्धार कर दिया। भरत जी ने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा श्री रामचन्द्र जी, राजा जनक जी तथा गुरु वशिष्ठ जी एवं संत-समाज सबसे प्रार्थना की, और कहा, आज मेरे इस अत्यन्त अनुचित वर्ताव को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर वचन कह रहा हूँ। फिर उन्होंने हृदय में सुन्दर सरस्वती का स्मरण किया वे मन रूपी मानसरोवर से उनके मुखारविन्द आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीति से युक्त भरत जी की वाणी सुन्दर हंसिनी के समान गुण-दोष का विवेचन करने वाली है।

(७३) दो०—**निरखि विवेक ..... सीय रघुराज।**

विवेक नेत्रों से सारे समाज को प्रेम से शिथिल देख, सबको प्रणाम कर श्री सीता जी और श्री राम जी का स्मरण करके भरत जी बोले।

प्रभु पितु मातु.....सनेह सेवकाई।

हे प्रभु ! आप पिता, माता, सुहृद, गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और

अन्तर्यामी हैं। सरलहृदय, श्रेष्ठ मालिक, शील के भण्डार, शरणागत की रक्षा करने वाले, सर्वज्ञ, सुजान, समर्थ, शरणागत का हित करने वाले, गुणों का आदर करने वाले और अवगुणों तथा पापों को हरने वाले हैं। हे गोसाईं ! आपके समान स्वामी आप ही हैं। और स्वामी के साथ द्रोह करने में मेरे समान मैं ही हूँ। मैं मोहवश आप के और पिताजी के वचनों का उल्लंघन कर, समाज बटोर कर यहाँ आया हूँ। जगत् में भले बुरे, ऊँचे और नीचे अमृत और अमरपद, विष और मृत्यु आदि किसी को भी कहीं ऐसा नहीं देखा सुना, जो मन में भी आप की आज्ञा को मेट दे। मैंने सब प्रकार से वही ढिठाई की परन्तु आपने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

(७४) दो०—कृपा भलाई.....चहुँ ओर।

हे नाथ ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दोष भी गुण के समान बन गए। और चारों ओर मेरा सुन्दर यश छा गया।

राउरि रीति ..... पाठक आधीना।

हे नाथ ! आप की सुन्दर रीति और स्वभाव की बड़ाई संसार में प्रसिद्ध है, और वेदशास्त्रों ने गाई है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलकी, नीच शीलरहित, नास्तिक और निश्शंक हैं, उन्हें भी आपने शरण में सन्मुख आया सुन कर एकबार प्रणाम करने पर ही अपना लिया। उन शरणागतों के दोषों को देख कर भी आप ने अपने हृदय में कभी नहीं सोचा और उनके गुणों को सुन कर साधुओं के समाज में उनका वर्णन किया। ऐसा सेवक पर कृपा करने वाला स्वामी कौन है ? जो स्वयं सेवक का सारा साज-समान सजदे (अर्थात् उसकी आवश्यकताओं को पूरा करदे) और स्वप्न में भी अपनी कोई करनी न समझ कर (अर्थात् मैंने सेवक के लिये कुछ किया है ऐसा न जानकर) उलटा सेवक को संकोच होगा, इसका सोच अपने हृदय में रक्खे। मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। बन्दर आदि पशु नाचते, और तोते सीखे हुए पाठ में प्रवीण हो जाते हैं परन्तु तोते का पाठ प्रवीणता रूपी गुण और पशु के नाचने की गति क्रमशः पढ़ाने वाले और नचाने वाले के आधीन है।

(७५) दो०—यों सुधारि ..... वर जोर।

इस प्रकार अपने सेवकों की बिगड़ी बात सुधार कर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओं का शिरोमणि बना दिया। आपके सिवाय अपनी विरदावली का और कौन हठपूर्वक पालन करेगा ?

सोक सनेहु ..... अति आरति जानी।

मैं शोक से या स्नेह से या बालक स्वभाव से आज्ञा को न मानकर चला आया तो भी कृपालु स्वामी आपने अपनी ओर देखकर सभी प्रकार से मेरा भला ही माना। (मेरे इस अनुचित कार्य को भी अच्छा ही समझा।) मैंने सुन्दर मंगलों के मूल आपके चरणों का दर्शन किया और यह जान लिया कि स्वामी मुझ पर स्वभाव से ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाज में अपने भाग्य को देखा, कि इतनी बड़ी चूक होने पर भी स्वामी का मुझ पर कितना अनुराग है। कृपा निधान ने मुझ पर पूर्ण कृपा और अनुराग सब अधिक ही किये हैं। (मैं जिसके ज़रा भी लायक नहीं था, उतनी अधिक सर्वांगपूर्ण कृपा आपने मुझ पर की है) हे गोसाईं ! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा। हे नाथ ! मैंने स्वामी और समाज के संकोच को छोड़कर अविनय या विनय भरी जैसी रुचि हुई, वैसी ही वाणी कह कर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव ! मेरी आतुरता को जान कर आप क्षमा करेंगे।

(७६) दो०—सुहृद सुजान .....सुधारी मोरि।

सुहृद (मित्र) बिना करण के हित करने वाले, बुद्धिमान और श्रेष्ठ मालिक से बहुत कहना बड़ा भारी अपराध है। इसलिए हे देव ! अब मुझे आज्ञा दीजिये, आपने मेरी सभी बात सुधार दी।

प्रभुपद पदुम.....सभा रघुराऊ।

आपके चरण कमलों की रज जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुख की सुन्दर सीमा है। उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदय की जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहने वाली रुचि कहता हूं। वह रुचि है, कपट, स्वार्थ और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों फलों को छोड़ कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना। और आज्ञा पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की और कोई सेवा नहीं है। हे देव ! अब वही आज्ञा रूप प्रसाद सेवक को मिल जाए।

भरत जी ऐसा कहकर प्रेम से बहुत ही विवश होगये। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रों में आँसू भर आये, व्याकुल होकर उन्होंने प्रभु श्री राम जी के चरण पकड़ लिये। उस समय के स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता। कृपा सिंधु श्री राम ने सुन्दर वाणी से भरत जी का सम्मान करके हाथ पकड़ कर उन्हें अपने पास बिठा लिया। भरत जी की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देख कर सारी सभा और श्री राम जी स्नेह से शिथिल हो गए।

छन्द—रघुराउ सिथिल.....नलिन से।

श्री रघुनाथ जी, साधुओं का समाज, मुनि वशिष्ठ जी, और मिथिलापति जनक जी, स्नेह से शिथिल हो गए। सब मन ही मन भरत जी के भाईपने और उनकी भक्ति की अत्यन्त महिमा को सराहने लगे। देवता मलिन मन से भरत जी की प्रशंसा करते हुए उन पर फूल बरसाने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं, सब लोग भरत जी का भाषण सुनकर व्याकुल हो गये। और ऐसे सकुचा गए, जैसे रात्रि के आगमन से कमल।

(७१) सो०—देखि दुखारी.....मंगल चहत।

दोनों समाजों के सभी नर-नारियों को दीन और दुखी देखकर महामलिन मन इन्द्र मरे हुओं को मारकर अपना मगल चाहता है।

कपट कुचालि.....मघवा निजु जानू।

देवराज इन्द्र कपट और कुचाल की सीमा है, उसे पराई हानि और अपना लाभ ही प्रिय है। इन्द्र की रीति कौए के समान है। वह छली और मलिनमन है, उसका कहीं किसी पर विश्वास नहीं है। पहिले तो बुरा विचार करके कपट को बटोरा। फिर वह कपट से उत्पन्न उचाट सबके सिर पर डाल दिया। फिर देवमाया से सब लोगों को, विशेष रूप से मोहित कर दिया। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम से उनका अत्यन्त वियोग नहीं हुआ (अर्थात् उनका श्रीराम जी के प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा)। भय और उचाट के भय किसी का मन स्थिर नहीं है। क्षण में उनकी वन में रहने की इच्छा होती है और क्षण में उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मन की इस प्रकार की दुविधा भरी स्थिति से प्रजा दुःखी हो रही है। मानो नदी और समुद्र के संगम का जल क्षुब्ध हो रहा हो (जैसे नदी और समुद्र के संगम का जल स्थिर नहीं

रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकार की दशा प्रजा के मन की हो गई)। चित्त द्विविधा में पड़ जाने से वे कभी संतोष नहीं पाते। और एक दूसरे से अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्रीरामचन्द्र जी यह दशा देखकर हृदय में हँसकर कहने लगे। कुत्ता, इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक समान होते हैं। (पाणिनीय व्याकरण के 'श्वयुवमघोनाम-तद्धिते, इस सूत्र के अनुसार श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दों के रूप भी एक समान ही होते हैं)।

(७८) दो०—भरतु जनकु.....जनु पाइ।

भरत जी, जनक जी, मुनिजन, मंत्री और ज्ञानी साधु-सन्तों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस मनुष्य को जिस योग्य पाया, उस पर वैसे ही देवमाया लग गई।

कृपा सिन्धु लखि.....वचन की नाई।

कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्र जी ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इन्द्र के भारी छल से दुःखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरू, ब्राह्मण और मंत्री आदि सभी की बुद्धि को भरत जी की भक्ति ने कील (खण्डित) कर दिया। सब लोग चित्र लिखे से श्रीरामचन्द्र जी की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए, सिखाए हुए से वचन बोलते हैं। भरत जी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुख देने वाली है, परन्तु उसके वर्णन करने में कठिनाई है। जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनक जी प्रेम में मग्न हो गये, उन भरत जी की महिमा को तुलसीदास कैसे कहे? उनकी भक्ति और सुन्दर भाव से कवि के हृदय में सुबुद्धि का विकास होता है। परन्तु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरत जी की महिमा को बड़ी जानकर कवि परम्परा की मर्यादा को मानकर सकुचा गई। अर्थात् वर्णन करने का साहस नहीं कर सकी। उसकी गुणों में रुचि तो बहुत है, परन्तु उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के वचनों की तरह हो गई। कुण्ठित हो गई है।

(७९) दो०—भरत बिमल.....रही निहारि।

भरत जी का निर्मल यश उज्ज्वल चन्द्रमा है और कवि की सबुद्धि चकोरी

है, जो भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में उस चन्द्रमा को उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाये देखती ही रह गई है तब उसका वर्णन कौन करे ?

भरत सुभाउ.....प्रेम प्रवीना ।

भरत जी के स्वभाव का वर्णन वेदों के लिए भी सुगम नहीं है, अतः मेरी तुच्छबुद्धि की चंचलता को कवि लोग क्षमा करें, भरत जी के सद्भाव को कहते सुनते कौन मनुष्य श्रीराम जी के चरणों में अनुरक्त न हो जायेगा। भरत जी का स्मरण करने से जिसको श्री रामचन्द्र जी का प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान अभागा और कौन होगा ? दयालु और सुजान श्री राम जी ने सभी की दशा देखकर और भक्त भरत जी के हृदय की स्थिति जानकर, धर्मधुरंधर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालन करने वाले श्री राम जी देश, काल, अवसर और समाज को देखकर, तदनुसार ऐसे वचन बोले, जो मानो वाणी के सर्वस्व ही थे। परिणाम में हितकारी थे और सुनने में चन्द्रमा के रस (अमृत) के समान थे। उन्होंने कहा, हे तात ! भरत। तुम धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो, लोक और वेद दोनों के जानने वाले और प्रेम में प्रवीण हो।

(८०) **दो०—करम बचन.....कहि जात ।**

हे तात ! कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों के समाज में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण किस तरह कहे जा सकते हैं ?

जानहु तात !.....सबु लीन्हा ।

हे तात ! तुम सूर्यकुल की रीति को, सत्य प्रतिज्ञ पिता की कीर्ति औ प्रीति को समय-समय और गुरुजनों की मर्यादा को तथा उदासीन, मित्र औ शत्रु सबके मन की बात को जानते हो। तुम्हें सबके कर्तव्यों का और अप तथा मेरे परमहितकारी धर्म का पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकार भरोसा है तथापि मैं समय के अनुसार कुछ कहता हूँ। हे तात ! पिता ज के बिना हमारी बात केवल गुरुवंश की कृपा ने ही संभाल रक्खी है, नहीं त हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते। यदि बिना समय के संध्या से पूर्व ही, सूर्य अस्त हो जाये, तो बताओ, जगत् में किसे दुःख न

होगा ? हे तात ! उसी प्रकार का उत्पात विधाता ने यह (पिता की असामयिक मृत्यु) किया है, परन्तु मुनि महाराज ने तथा मिथिलेश्वर ने सबको बचा लिया।

(८१) दो०—राज काज सब·····होइहि परिनाम।

राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर इन सभी का पालन गुरु जी का सामर्थ्य करेगा और परिणाम शुभ होगा।

सहित समाज.....असिनिहु के धाये।

गुरु जी का अनुग्रह ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन समस्त धर्म रूपी पृथ्वी को धारण करने में शेष जी के समान है। हे तात ! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्य कुल के रक्षक बनो। साधक के लिए यह एक ही साधना सम्पूर्ण सिद्धियों की देने वाली कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है। इसे विचार कर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी बनाओ। हे भाई ! मेरी विपत्ति सभी ने बांट ली है। परन्तु तुम्हें तो चौदह वर्ष तक बड़ी कठिनाई है, सबसे अधिक दुःख है। तुमको कोमल जान कर भी मैं कठोर बात कह रहा हूँ। हे तात ! बुरे समय में मेरे लिए यह कोई अनुचित बात नहीं है। संकट में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्र के आघात भी हाथ से रोके जाते हैं।

(८२) दो०—सेवक कर पद.....सराहहिं सोइ।

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं, कि सेवक और स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

सभा सकल सुनि.....पावौं जेहि सेई।

श्रीरामचन्द्र जी की वाणी सुनकर जो मानो प्रेम रूपी समुद्र के मन्थन से निकले हुए अमृत में सनी हुई थी। सारा समाज शिथिल हो गया, सब की प्रेम समाधि लग गई। यह दशा देखकर सरस्वती ने भी चुप्पी (मौन) साध ली। भरत जी को परम संतोष हुआ, स्वामी के अनुकूल होते ही उनके दुःख और दोषों ने मुँह मोड़ लिया। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मन का

विषाद मिट गया। मानो गूंगे पर सरस्वती की कृपा हो गई हो। उन्होंने फिर प्रेम पूर्वक प्रणाम किया और कर कमलों को जोड़कर वे बोले, हे नाथ! मुझे आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत में जन्म लेने का लाभ भी प्राप्त कर लिया। हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, उसी को मैं सिर पर धर कर आदर पूर्वक करूँ। परन्तु देव! आप मुझे वह अवलम्बन दें, जिसकी सेवा कर मैं अवधि को पार कर सकूँ (बिता सकूँ)।

(८३) दो०—देव देव..... काह रजाइ।

हे देव! आपके अभिषेक के लिये गुरु जी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेता आया हूँ। उसके लिए क्या आज्ञा होती है?

एक मनोरथु.....मुदित सिरु नावा।

मेरे मन में एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता। श्री राम ने कहा, हे भाई! कहो। तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरत स्नेहपूर्ण सुन्दर वाणी बोले। आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पशु-पक्षी, तालाब, नदी, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेष कर आपके चरण चिन्हों से अंकित भूमि को देख आऊँ। श्री राम जी बोले, अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा का पालन करो और निर्भय होकर वन में विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से वन मंगलों का देने वाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है। और ऋषियों के प्रमुख अत्रि जी, जहाँ आज्ञा दें, वहीं तीर्थों का जल स्थापित कर देना, प्रभु के वचन सुनकर भरत जी ने सुख पाया और आनंदित होकर अत्रि मुनि के चरणों में सिर नवाया।

(८४) दो०—भरत राम संवादु.....सुरतरु फूल।

समस्त सुन्दर मंगलों का मूल भरत जी और श्री रामचन्द्र जी का संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुकुल की सराहना करके कल्प वृक्ष के फूल बरसाने लगे।

धन्य भरत जय·····भरत भलाई।

भरत जी धन्य हैं, स्वामी श्रीराम जी की जय हो, ऐसा कहते हुए देवता अत्यन्त हर्षित होने लगे। भरत जी वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ जी मिथिलापति जनक जी और सभा में सब किसी को बड़ा भारी आनन्द हुआ। भरत जी

और श्री रामचन्द्र जी के गुण समूह की तथा प्रेम की जनक जी पुलकित होकर प्रशसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनों का सुन्दर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्र को भी अत्यन्त पवित्र करने वाले हैं। मन्त्री और सभासद् सभी प्रेम मुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्री राम और भरत का संवाद सुन सुनकर दोनों समाजों के हृदयों में हर्ष और विषाद (भरत जी के सेवा धर्म को देखकर हर्ष और राम वियोग की सम्भावना से विषाद)दोनों हुए। श्रीराम जी की माता कौशल्या जी ने दुःख और सुख को समान जानकर श्रीराम जी के गुण वर्णन करके दूसरी रानियों को धैर्य बंधाया। कोई श्रीराम की बड़ाई की चर्चा कर रहे हैं। तो कोई भरत जी के अच्छेपन की सराहना करते हैं।

(८५) दो०— अत्रि कहेउ तब.....अमिअ अनूप।

तब अत्रि जी ने भरत जी से कहा, इस पर्वत के समीप ही एक सुन्दर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत जैसे तीर्थ जल को उसी में स्थापित कर दीजिए।

भरत अत्रि.....करम मन बानी।

भरत जी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिये और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि, तथा अन्य साधु-सन्तों सहित आप वहाँ गये, जहाँ वह अथाह कुआँ था और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया, तब ऋषि (अत्रि) ने प्रेम से आनंदित होकर ऐसा कहा, हे तात! यह अनादि सिद्ध स्थल है, कालक्रम से यह लोप हो गया था। इसलिए किसी को इसका पता नहीं था। तब भरत जी के सेवकों ने उस जल युक्त स्थान को देखा, और उस सुन्दर तीर्थों के जल के लिए एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोग से विश्व भर का उपकार हो गया, धर्म का विचार जो अत्यन्त अगम था, वह इस कुएँ के प्रभाव से सुगम हो गया। अब इसे लोग "भरतकूप" कहेंगे। तीर्थों के जल के सयोग से तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेम पूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो जायेंगे।

(८६) दो०—कहत कूप.....पुण्य प्रभाउ ।

कुएँ की महिमा कहते हुये सब लोग वहाँ गये, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी थे। श्री राम को अत्रि जी ने उस तीर्थ का पुण्य-प्रभाव सुनाया।

कहत धरम.....राम प्रिय जानी ।

प्रेम पूर्वक धर्म के इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई, और सबेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्य क्रिया पूरी करके श्रीराम जी, अत्रि जी और गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर समाज सहित सब सादे साज से श्री राम जी के वन में भ्रमण करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन ही मन सकुचा कर कोमल हो गई। कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारें आदि कड़वी और कठोर वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर और कोमल मार्ग कर दिये। सुखों को साथ लिये सुखदायक शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी। रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सभी भरत जी को श्रीराम जी के प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे।

(८७) दो०—सुलभसिद्धिसब.....बड़ि बात ।

जब एक साधारण मनुष्य को भी आलस्य से जम्भाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्री राम जी के प्राणप्यारे भरत जी के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

एहिविधि.....विलोकहिं आई ।

इस प्रकार भरत जी वन में घूम फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के स्थान (नदी, बावली, कुण्ड आदि) पृथ्वी के पृथक् पृथक् भाग पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण, (घास) पर्वत, वन और बगीचे, सभी विशेष रूप से सुन्दर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरत जी पूछते हैं। और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रि भी प्रसन्न मन से सब के कारण, नाम, गुण और पुण्य प्रभाव को कहते हैं। भरत जी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं अत्रि मुनि की आज्ञा पा कर बैठकर सीता जी सहित, श्रीराम-लक्ष्मण

दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं। भरत जी के स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवा भाव को देखकर वन देवता आनन्दित होकर आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार घूम फिर कर ढाई पहर दिन बीतने पर लौटते हैं। और आकर प्रभु श्री राम जी के चरण-कमलों का दर्शन करते हैं।

(८८) **दो ०—देखे थल तीरथ.....बिबसु भई सांझ.**

भरत जी ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लिए। भगवान् विष्णु और महादेव जी का सुन्दर यश कहते सुनते वह पाँचवाँ दिन भी बीत गया। संध्या हो गई।

भोर न्हाइ सबु.....अवधि भरि जाई।

अगले छठे दिन सवेरे स्नान करके भरत जी, ब्राह्मण, राजा जनक, और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करने के लिए अच्छा दिन है। यह मन में जान कर भी कृपालु श्रीराम जी कहने में सकुचा रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ जी, राजा जनक जी, भरत जी और सारी सभा की ओर देखा, किन्तु फिर सकुचा कर दृष्टि फेर कर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है, कि श्रीराम जी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं हैं। सुजान भरत जी श्री राम जी का रुख देखकर प्रेम पूर्वक उठकर विशेष रूप से धीरज धर, दण्डवत् करके हाथ जोड़ कर कहने लगे। हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं। मेरे लिए सब लोगों ने संताप सहा, और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब मुझे आज्ञा देवें। मैं जाकर चौदह वर्ष तक अवध का सेवन करूँ।

(८९) **दो ०—जेहिं उपाय.....कोसल पाल कृपाल**

हे दीन दयाल! जिस उपाय से यह दास फिर आपके चरणों का दर्शन करे, हे कोसलाधीश, हे कृपालु! अवधि भर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए।

पुरजन परिजन.....गति हंसी।

हे गोसाई! आपके प्रेम और सम्बन्ध से अवधपुर निवासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनन्द) से युक्त हैं। आपके लिए जन्म मरण के दुःख की ज्वाल में जलना भी अच्छा है, और आपके बिना मोक्ष का लाभ भी

व्यर्थ है। हे स्वामी ! आप सुजान हैं, सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा और रहती जानकर हे प्रणतपाल ! आप सब का पालन करेंगे, और हे देव ! दोनों तरफ को ओर-अन्त तक निबाहेंगे। मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है विचार करने पर तिनके के बराबर भी सोच नहीं रह जाता। मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिल कर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है। हे स्वामी ! इस बड़े दोष को दूर करके संकोच त्याग कर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की सी गति वाली भरत जी की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की।

(९०) दो०—दीनबन्धु सुनि.....रामु प्रवीन।

दीन बन्धु और परम चतुर श्री राम जी भाई भरत जी के दीन और निश्छल वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले।

तात तुम्हारी.....प्रजा रजधानी।

हे तात ! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिन्ता गुरु वशिष्ठ जी और महाराज जनक जी को है। हमारे सिर पर अब गुरु जी मुनि विश्वामित्र जी और मिथिलापति जनक जी हैं तब हमें और तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं है। मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता जी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है। गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से, कुमार्ग पर भी चलने से पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़ कर, अवध जाकर अवधि भर उसका पालन करो। देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सब की जिम्मेदारी तो गुरु जी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ जी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन करते रहना।

(९१) दो०—मुखिआ मुखु.....सहित विवेक।

तुलसीदास जी कहते हैं (श्रीराम जी ने कहा) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने पीने को तो अकेला है, परन्तु विवेक पूर्वक सब अंगों

का पालन पोषण करता है।

राज धरम सरबसु.....रामु रहें ते।

राजधर्म का सार भी इतना ही है, जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है, श्री राम जी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मन में न तो संतोष हुआ और न शान्ति। इधर तो भरत जी का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति। यह देखकर श्री रघुनाथ जी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए। (अर्थात् भरत जी के प्रेमवश उन्हें पांवरी (खड़ाऊँ) देना चाहते हैं। किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है,) आखिर (भरत जी के प्रेम वश) प्रभु श्रीराम चन्द्र जी ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरत जी ने उन्हें आदर पूर्वक सिर पर धारण कर लिया। करुणानिधान श्री रामचन्द्र जी की दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरत जी के प्रेम रूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है। और जीव के साधन के लिए मानो 'राम' नाम के दो अक्षर हैं। रघुकुल की रक्षा के लिए दो किवाड़ हैं। कुशल कर्म करने के लिए दो हाथ की तरह सहायक हैं और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरत जी इस अवलम्ब के मिल जाने से परम आनन्दित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ जैसा श्रीराम जी के रहने से होता।

(९२) **दो०—माँगेहु बिदा.....कुअवसरु पाइ।**

भरत जी ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इन्द्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया।

सो कुचालि सब.....जग जल जाए।

वह कुचाल भी सबके लिए हितकर हो गई, अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिए संजीवनी हो गई। नहीं तो, (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मण जी, सीता जी और श्री रामचन्द्र जी के वियोग रूपी बुरे रोग से सब लोग घबराकर (हाय हाय करके) मर ही जाते। श्री रामचन्द्र जी की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही

गुणदायक (हितकारी) और रक्षक बन गई। श्री राम जी भुजाओं में भर कर भाई भरत से मिल रहे हैं। श्रीराम जी के प्रेम का वह (रस) आनन्द कहते नहीं बनता। तन, मन, और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा, धीरज की धुरी को धारण करने वाले श्री राम जी ने भी धीरज त्याग दिया, वे कमल के समान नेत्रों से आँसू बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गई। मुनिगण, गुरु वशिष्ठ जी और जनक जी जैसे धीरधुरंधर जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिन को ब्रह्मा जी ने निर्लेप ही रचा, और जो जगत् रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही पैदा हुये। अर्थात् अनासक्त रहे।

(९३) **दो० — तेउ विलोकि.........विराग विचार।**

वे भी श्रीराम जी और भरत जी के उपमारहित अपार प्रेम को देख कर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गये।

जहाँ जनक गुर.........बहोरि बहोरी।

जहाँ जनक जी तथा गुरु वशिष्ठ जी की बुद्धि की गति कुण्ठित हो गई। उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक) कहने में बड़ा दोष है। श्री रामचन्द्र जी और भरत जी के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय समझेंगे। यह संकोच रस अवर्णनीय है। अतएव कवि की सुन्दर वाणी उस समय उसके प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरत जी को भेंट कर श्री राम जी ने उन्हें समझाया, फिर हर्षित होकर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगा लिया। सेवक और मन्त्री भरत जी का रुख पाकर सब अपने अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजों में दारुण दुःख छा गया। वे चलने की तैयारियाँ करने लगे। प्रभु के चरण-कमलों की वंदना करके तथा श्री राम जी की आज्ञा को सिर पर धारण कर भरत शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वन देवता—सब का बार बार सम्मान करके उनकी विनती की।

(९४) **दो० — लखनहि भेंटि.........सुमंगल मूरि।**

फिर लक्ष्मण जी को क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीता जी के चरणों की धूल को सिर पर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले।

सानुज राम .....कृपानिधि फेरे ।

छोटे भाई लक्ष्मण जी समेत श्रीराम जी ने राजा जनक जी को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की और कहा, हे देव ! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाज सहित वन में आये। अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिये, यह सुन राजा जनक जी ने धीरज धर कर गमन किया फिर रामचन्द्र जी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव जी के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया। तब श्री रामलक्ष्मण दोनों भाई सास सुनयना जी के पास गये और उनके चरणों की वंदना करके आशीर्वाद पाकर लौटकर आये। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरण वाले कुटुम्बी, नगर निवासी और मन्त्री, सब को छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित श्रीरामचन्द्र जी ने छोटे, मध्यम और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उनको लौटाया।

(९७) दो०—भरतमातुपद.....सोच सब मेटि ।

भरत की माता कैकेयी के चरणों की वदना करके प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने पवित्र निश्छल प्रेम के साथ उनसे मिल भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया।

परिजन मातु .....परवस मन मारें ।

प्राणप्रिय पति श्री रामचन्द्र जी के साथ पवित्र प्रेम करने वाली माता नैहर के कुटुम्बियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं। फिर प्रणाम करके सब साधुओं से गले लगकर मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिये कवि के हृदय में उत्साह नहीं होता। उनकी शिक्षा सुनकर और मन चाहा आशीर्वाद पाकर सीता जी सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समाईं (बहुत देर तक लगी रही) तब श्रीराम जी ने सुन्दर पालकियाँ मंगवाईं और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया। दोनों भाईयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिलजुल कर उनको पहुँचाया। भरत जी और राजा जनक जी के दलों ने घोड़े, हाथी और अनेक तरह की सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया। सीता जी एवं लक्ष्मण जी सहित श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में रख कर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि

पशु हृदय में हारे (शिथिल हुए) परवश मन मारे चले जा रहे हैं।

(९६) दो०—गुर गुरु तिय.....परन निकेतन।

गुरु वशिष्ठ जी और गुरु पत्नी अरुन्धती जी के चरणों की वंदना करके सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्णकुटी पर आये।

विदा कीन्ह.....उर न खरोसो।

फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदय में वियोग का बड़ा भारी विषाद था। फिर श्री रामचन्द्र जी ने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार जोहार कर (वन्दना करके) लौटे। प्रभु श्री रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण जी बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरत जी के स्नेह स्वभाव और सुन्दर वाणी को कह कह कर वे, प्रिय पत्नी सीता जी और छोटे भाई लक्ष्मण जी से कहने लगे। श्री रामचन्द्र जी ने प्रेम के वश में होकर भरत के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी,पशु और जल की मछलियां, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़.जीव उदास हो गये। श्री राम जी की दशा देखकर, देवताओं ने उन पर फूल बरसा कर अपनी घर घर की दशा कही। दुखड़ा सुनाया। प्रभु श्रीराम जी ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले। मन में जरा सा भी डर न रहा।

(९७) दो०—सानुज.....सीय धरें सरीर।

छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी समेत प्रभु श्री रामचन्द्र जी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण करके शोभित हो रहे हों।

गीतावली

(१) मेरे बालक कैसे.....ह्वै है दिन सोऊ ।

(इधर कौशल्या जी चिन्ता कर रही हैं, 'मेरे बालक किस प्रकार मार्ग में निर्वाह करेंगे । वे संकोच के कारण अपनी भूख, प्यास, शीत और श्रम आदि के विषय में विश्वामित्र जी से भी क्यों कहेंगे ? उन्हें प्रातः काल होते ही उबटन मलकर कौन स्नान करायेगा, कौन कलेवा निकाल कर देगा, और कौन आभूषण पहिनाकर निछावर करते हुए नेत्रों का आनन्द लूटेगा ? जिन्हें पिता, परिजन और माताएँ सदा नेत्रों के पलकों के समान सँभाल रखती थीं, उन्हें राजा ने यज्ञ की रखवाली और निशाचरों का संहार करने के लिए विश्वामित्र जी के साथ भेज दिया । हे विधाता ! क्या कभी वह दिन आयेगा, जब मैं उन अति सुन्दर, सलोने सुकुमार सुकोमल और काक पक्षधारी दोनों बालकों को देखकर अति हर्षित हो हृदय से लगाऊँगी ।

(२) ऋषि नृप सीस.....ज्यों सुभाय सुतचारी ।

ऋषिवर विश्वामित्र जी ने तो राजा के मस्तक पर कुछ जादू सा कर दिया । इस विपरीत स्थिति का कुल गुरु, मंत्री और निपुण नायकों ने भी बुद्धि पूर्वक सुधार नहीं किया । देखो, दोनों कुमार तो सिरस के फूल के समान सुकुमार हैं और राक्षस लोग वीर तथा क्रोधी हैं फिर भी क्रीड़ा के धनुष-बाण लिये उन्हें बिना किसी प्रकार की सहायता के पैदल ही भेज दिया । इस प्रकार माता कौशल्या स्नेह से आतुर और दुखित होकर कहने लगीं, अरी सखि ! सुन, संसार में वीर पुरुष की माता का जीवन तो वृथा

ही है और क्षत्रिय जाति की गति भी बड़ी ही विकट है। जो पुरुष मुझ से यह कहेगा 'कि राम और लक्ष्मण मुनि के यज्ञ की रक्षा कर घर लौट आये हैं। वह स्वभाव से ही मुझे वैसा ही प्रिय लगेगा जैसे मेरे लिए चारों पुत्र प्यारे हैं।

(३) जब तें लै मुनि.....कही सुमंगल बानी।

अरी सखि ! जब से मुनीश्वर अपने साथ लेकर गये हैं, तब से मुझे राम लक्ष्मण का कुछ भी समाचार नहीं मिला। उन्हें बिना जूतियों के चलना फलाहार करना, वृक्ष की छाया में पृथ्वी पर सोना और नदी एवं तालाबों का पानी पीना पड़ेगा। उन बालको के साथ कोई अच्छा सेवक भी नहीं है। विश्वामित्र जी तो बड़े कृपालु, परमहितकारी, सामर्थ्यवान, सुखदायक और सदाचारी हैं, परन्तु ये शुद्ध चित्त बालक भी बड़े ही सुकुमार और संकोच करने वाले हैं। अरी सखि ! यह जानकर ही मुझे बड़ा सोच हो रहा है। सुमित्रा के ये प्रेमपूर्ण वचन सुनकर सब रानियाँ स्नेह-वश हो गईं। तुलसी दास जी कहते हैं, इसी समय भरत जी ने आकर मंगलमय वचन सुनाए।

(४) आजु को भोर.....देखिन सकेऊ विधाता।

(राम के विरह से व्याकुल होकर माता कौशल्या कह रही हैं) अरी माई ! आज का प्रातः काल का मुझे कुछ और ही तरह का जान पड़ता है। आज द्वारपर न तो वेद और बन्दी जन की ही ध्वनि सुनाई देती है। और न गुणियों की मनोहर वाणी का ही शब्द सुनाई पड़ता है। अपने अपने पतियों के सुन्दर महलों से रूप, शील और छवि से संम्पन्न मेरी पुत्रवधुएँ भी सीता को आगे कर आज मेरे पास आशीर्वाद लेने के लिए नहीं आईं। आज मुझ से रघुवीर ने हँसकर यह नहीं पूछा, कि माँ ! सुमित्रा माता कहाँ हैं ? अहो ! मेरे महासुख को मानो विधाता ही नहीं देख सका।

(५) जननी निरखत·····लागति प्रीति सखीसी।

माता रघुवीर के खेल-कूद के धनुष को देखती हैं और प्रभु की जो नन्हीं सुन्दर जूतियाँ हैं उन्हें बार बार हृदय और नेत्रों से लगाती हैं। कभी पहले की भाँति सबेरे ही मंदिर में जाकर इस प्रकार के प्रिय वचन कह कर जगाने

देखो सारे छोटे भाई और सखागण द्वार पर खड़े हैं और कभी कहती हैं, भैय्या बहुत विलम्ब हो गया है, महाराज के पास जाओ और अपने साथियों को बुलाकर जो रुचे सो भोजन करो, माता निछावर होती है। तथा कभी राम का वनगमन स्मरण कर चकित होकर चित्रलिखित सी रह जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं, उस समय का वर्णन करने से तो प्रीति सीखी हुई सी जान पडती है। क्योंकि सच्चा प्रेम होने पर तो उसका वर्णन ही नहीं हो सकेगा, चित्त विवश होकर विरहाग्नि में दग्ध हो जायेगा।

(६) **माईरी ! मोहि.....पीर न जाति बखानी।**

(माता कौशल्या कहती है) अरी मैया ! मुझे कोई नहीं समझाता। मुझे अभी तक विश्वास नहीं होता कि राम का वनगमन सत्य है अथवा कोई स्वप्न हुआ है। राम लक्ष्मण और सीता मेरे नेत्रों के सामने सदा लगे ही रहते हैं। तो भी विधाता ऐसा विपरीत हो गया है कि इस हृदय का दाह दूर नहीं होता। रघुनाथ जी के देखने पर तो दुःख नहीं रह सकता और बिना देखे शरीर का रहना असंभव है। किन्तु मेरे प्राणों ने अभी तक कूच नहीं किया। इसलिए हे सखि ! सुनो, इस नियम में अवश्य कोई गड़बड़ हुई है। कौशल्या जी के ये विरह वचन सुनकर सब रानियाँ रो पड़ीं। तुलसीदास जी कहते हैं, श्रीराम के विरह की कथा का वर्णन नहीं हो सकता।

(७) **जब जब भवन.....सोक जनित रुज मेरो।**

माता कौशल्या जब जब घर को सूना देखती हैं तब तब व्याकुल हो जाती हैं। उन्हें दिन प्रतिदिन दूना दुःख हो रहा है। वह भगवान् राम के मुनिमनहारी बाल-विनोदों को याद करती हैं और उनके सुकुमार चरण-कमलों को राजमन्दिर के आँगन में ही विचरने वाले समझकर उनके हृदय में बड़ी पीड़ा होती है। वे कहने लगती हैं, अरी मैया ! अब प्रातः काल होते ही कलेवा माँगकर (उसमें देरी होने पर) कौन रूठ कर भागेगा। और नील-कमल के समान नेत्रों से, जल बहते देखकर मैं किसे हृदय से लगाऊँगी ? अब मैं जीऊँगी तो रात दिन दुःख सहना पड़ेगा। और यदि मर गई तो हृदय में यह पश्चात्ताप रह जायेगा कि बन को जाते समय मैं आँखें भर कर राम का मुख भी न देख सकी। यह दशा अत्यन्त असह्य है. अत्यन्त कठोर

विरह है, ऐसा कौन है जो अत्यन्त कृपा के बिना मेरी इस शोक जनित पीड़ा को दूर कर सके।

(८) **मेरो यह अभिलाषु ..... मनहु चित्र लिखि काढ़ी।**

अरी सखि! मेरी इस अभिलाषा को भक्तों को सुख देने वाला विधाता श्रीहरि अनुकूल होकर कब पूर्ण करेंगे? हे सखि! मेरे पास आकर कोई पुरुष कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले ये वचन कब कहेगा कि 'सीता के सहित तुम्हारे दोनों पुत्र कुशलपूर्वक अयोध्यापुरी को आरहे हैं।' इस संदेश को सुनकर मैं प्रेम में भर कर एक साथ उठ कर दौड़ूँगी और उनके मुख देखकर नेत्रों के प्रेमाश्रुओं को रोककर उन्हें हर्ष के साथ हृदय से लगा लूँगी। जनकनन्दिनी सीता मुझ से कब 'सासु जी' कहकर बोलेंगी और कब राम-लक्ष्मण मुझे मैया कहकर पुकारेंगे? और कब वे श्याम-गौर-वर्ण दोनों भाई बाँह से बाँह मिलाकर मेरे आंगन में डोलेंगे? तुलसीदास जी कहते हैं, ऐसे मनोरथ करते करते कौशल्या जी का स्नेह अत्यन्त बढ़ गया और वे हृदय में रामचन्द्र जी की छवि धारण कर थकित सी रह गईं, मानो चित्र में लिखी हुई हों।

(९) **कैकयी करी धौं.....प्रान गए संग जौन।**

कौशल्या जी कहती हैं, कैकयी ने भला क्या चतुराई की? व्यर्थ राम, लक्ष्मण और सीता को वन में भेजा और पति को देवलोक पहुँचा दिया। इससे भरत का भी क्या भला हुआ? तरुण अवस्था मे ही उसके शरीर में विरह रूपी दावाग्नि लग गई। इसके अतिरिक्त पुरवासियों के नेत्र भी मुझे कभी अश्रुहीन दिखाई नहीं देते। इस प्रकार कौशल्या जी दिनरात चुपचाप बैठी, मन ही मन खिन्न होती रहती हैं और सोचती हैं कि यदि हमारे प्राण राम के साथ नहीं गये तो रोना तो हमें उचित है नहीं।

(१०) **हाथ मींजिबो..... क्यों कछु परत कह्यो।**

(कौशल्या जी सोचती हैं) मेरे हाथ तो हाथ मलना ही लगा है, भला मेरे बिना यहाँ क्या बहा जाता था? (क्या कष्ट हो रहा था) जो मैं चित्रकूट से भी राम के साथ नहीं लगी। पति सुरलोक सिधार गये। राम, लक्ष्मण और सीता वन में जा बसे, और भरत ने भी मुनिव्रत धारण कर लिया। किन्तु

मैं श्मशान की अग्नि के समान घर में ही रह गई। मैंने तो मानो मृत्युरूपी मृतक को ही जला डाला है (अतः अब मुझे मौत भी नही आ सकती) विधाता को मेरा ही हृदय कठोर बनाने के लिए कही वज्र मिल गया था। (अर्थात् मेरा हृदय बनाते समय ब्रह्मा की दृष्टि में वज्र था। वह उससे भी कोई कठोर वस्तु बनाना चाहता था, फलस्वरूप उसने मेरा हृदय बनाया तात्पर्य यह है कि मेरा हृदय वज्र से भी कठोर है) हाय! मै पुत्र को वन में पहुँचा कर लौट आई। ऐसी दशा में कोई बात कैसे कही जा सकती है?

(११) हौं तो समुझि.....ह्वै है जग उपहांसी।

हे सखि! मै तो अपनी सी बात समझती हूँ। अरी! मेरे लिए तो राम, लक्ष्मण और सीता का सुखस्वप्न के समान हो गया। जिनकी विरह व्यथा को बँटाने के लिए आज पशु-पक्षी आदि सभी जीव दुःखी हो रहे हैं। अरी सजनी! उनके विषय मे मुझे क्या समझाती है? मै तो उनकी माता हूं। भरत की दशा सुनकर, महाराज की गति स्मरण कर और पुरवासियों को दीन देखकर मैं तो 'राम' कहने में भी सकुचाती हूँ, क्योंकि इससे ससार में मेरी हँसी होगी (कि देखो, इन दूर के सम्बन्धियों की तो ऐसी दुर्दशा है और स्वयं माता होकर यह जीवन धारण कर रही है)।

(१२) आली! हौं .....रामलखन के घोरे।

अरी सखी! मै इन घोड़ों को कैसे समझाऊँ? देख, जैसे माता के लिए पुत्र व्याकुल रहता है, उसी प्रकार इनके हृदय में बारंबार अपने स्वामी राम की प्रीति उमड़ आती है। यदि कोई द्वार पर बोलता है, तो ये बारबार उसी ओर देखकर हिनहिनाने लगते है क्यो? इन्हें मेरे उन दयालु प्रिय पुत्रों ने बालकपन से ही अपने से हिला मिला लिया था। इन के नेत्र सदा आँसुओं से भरे रहते हैं और ये खान पान को भूलकर सदा सोये हुये से रहते हैं। ये राम नाम सुनते ही चौंक पडते हैं। और हृदय में उनका स्मरण आते ही शोक-ग्रस्त हो जाते है। हाय! इन्हें प्रभु के वियोगरूप बधिक से इस प्रकार हठपूर्वक व्यथित होते देखकर भी मैं जी रही हूँ।

(१३) राघौ! एक बार.....इन्हको बड़ो अंदेसो।

हे राघव! तुम एक बार तो अवश्य लौट आओ। यहाँ अपने इन श्रेष्ठ

घोड़ों को देखकर फिर वन मे चले जाना। जिन्हे तुमने दूध पिलाकर, अपने ही कर कमलों से पुष्ट कर बारम्बार पुचकारा था। ऐ मेरे लाडले राम ! वे अब एकाएकी भूल जाने मे कैसे जीवित र, सकेंगे ? तुम्हारे अत्यन्त प्रिय जानकर यद्यपि भरत जी इनकी सौगुनी सभाल रखते हैं, तो भी पाले के मारे हुए कमल के समान ये प्रतिदिन दुर्बल होते जा रहे हैं। अरे पथिको ! सुनो, यदि तुम्हें वन में राम मिल जायें, तो तुम उनसे माता का यही संदेश कहना कि मुझे सब से बढ़कर इन घोडों की ही चिन्ता है।

(१४) सुनिरत घायल.....समय सचेत करे हैं।

जब सुमित्रा ने सुना, कि लक्ष्मणजी युद्धस्थल में घायल पडे हैं और उन्होंने अपने स्वामी के लिए विपक्षी योद्धा मेघनाद से रणभूमि में खूब ललकार कर लोहा भिड़ाया है। तो उन्हें पुत्र की दशा से तो शोक हुआ और इस बात से संतोष हुआ कि उन्होने राम की भक्ति को स्वीकार किया। उनके प्राण एक क्षण में शोक से सूख जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षण में आनन्द से हरे हो जाते हैं। तब माता सुमित्रा ने नेत्रो में जल भर कर, स्वभाव से ही हनुमान जी से कहा, रामजी कुअवसर मे भाई से बिछुड गये। यद्यपि धनुष उनके साथ है (जिसके होते हुए उन्हें अन्य किसी की सहायता की अपेक्षा नही है) (हनुमान जी से ऐसा कहकर वे शत्रुघ्न जी से बोली) भैया ! तुम इस हनुमान के साथ जाओ। यह सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। और शरीर में पुलकायमान होकर ऐसे प्रसन्न हुए मानो दैवयोग से उनके पूरे-पूर दांव पड़ गये हों। माता और छोटे भाई की यह दशा देखकर हनुमान और भरत जी बड़े ही ग्लानिग्रस्त हो गये। तुलसीदास जी कहते है, तब माता ने उन सबको समझा कर सचेत किया।

(१५) बिनय सुनायबो.....एहि नये तिहुं ताय।

(भरतजी कहने लगे) तुम भगवान् राम के पैरों पड़ कर मेरी एक बिनय सुनाना। हे कपीश्वर ! तुमसे मैं अधिक क्या कहूँ, तुम तो स्वभाव से ही शुद्ध चित्त, सुमति और सुहृद हो। मुझ मूढ को मेरी माता ने प्रभु को कष्ट पहुँचाने के लिए व्यर्थ ही जन्म दिया है। क्योंकि मैं उनका सेवक कहलाकर भी, समय पड़ने पर उनकी सहायता न कर सका। इस प्रकार कहते-कहते वे स्नेह से

शिथिल हो गये। जैसे कोई धीर पुरुष घाव से घायल हो जाने पर हो जाता है। भरत जी की यह दशा देखकर सब माताएँ इस प्रकार रह गईं जैसे वायु के बिना पतंग। कौशल्या जी बोली, भैया! राम से भेंट करके कहना, कि तुम्हारी कठोर हृदया माता ने कहा है—हे लाल! तुम्हारा नाम ललित लाल लक्ष्मण के सहित ही सुन्दर मालूम होता है। (अतः तुम्हारी शोभा लक्ष्मण के साथ ही लौटने में है) तुलसीदास जी कहते हैं, कि इस प्रकार भाई का स्नेह, माता का स्वभाव और लक्ष्मण जी को मर्माहत देख सूर्य को भी भस्म करने वाले हनुमान् जी इन तीनों नए तापों मे तपने लगे।

(१६) **अवधि आजु ....सालभंजनि को ह्वै हैं।**

(जब अवधि के दिन प्रायः बीत चुके तो माता कौशल्या को राम के मिलने की बड़ी ही लालसा हुई। उस समय वे कहती हैं) क्यों जी! अवधि आज ही पूरी होगी या उसका और कोई दिन आवेगा? फिर अपने महल पर चढ़कर दक्षिण की ओर देखती हुई कहती हैं, देखो पूछो तो, वे पथिक कहाँ से आ रहे हैं? फिर अवधि मे विलम्ब जान, हृदय में हार मानकर शोकग्रस्त हो जाती हैं। उनका शरीर पुलकित हो जाता है, नेत्रों से जल बहने लगता है। (और वे मन ही मन कहने लगती हैं) मालूम होता है, हम जो कुटिल कर्म किए हैं, उनके परिणाम में विधाता इन चौदह वर्षों को अपने ही दिनों के हिसाब से पूरा करेगा। हाय! राम वन में हैं और उनकी माता घर में रह कर जी रही है। अब ये निर्लज्ज प्राण, इस लोकापवाद को सुन सुनकर सुख की नींद सोवगे। भला! मुझ जैसी कठोरचित्त, वज्र की गढ़ी हुई मूर्ति कौन होगी?

(१७) **आली अब हम ....चित्त औरो कहुँ ह्वै हैं।**

अरी सखि! इस समय राम और लक्ष्मण किधर होगे? जब से उन्होंने चित्रकूट को छोड़ा है, तब से उनका कोई समाचार नहीं मिला। क्या वधू सीता के समेत, मेरे दोनों बालक सकुशल होंगे? वे वर्षा, वायु तथा भीषण शीत और घाम को सहते हुये, बिना वस्त्र के ही पृथ्वी पर पड़े रहते होगे। वन में कन्द मूल और फल-फूल आदि ही खाने को मिलते हैं और वह भोजन भी उन्हें समय पर खाने को कैसे मिलता होगा? जिन्हें देखकर लता और वृक्षादि को भी शोक होगा तथा पक्षी, मृग और मुनियों के नेत्रों से जल बहने लगेगा, मैं उन्हें

की माता हूँ। भला ! मुझ जैसी निठुर हृदय भी कोई कहीं होगी ?

(१८) **बैठी सगुन......मीन मरत जल पाया।**

माता बैठी बैठी शकुन मनाती है। अरे कौए ! सच सच बता, मेरे बालक कुशलपूर्वक कब घर आ जायेंगे ? जिस समय मैं नेत्र भरकर, सीता सहित राम और लक्ष्मण को देखकर हृदय से लगाऊँगी, उस समय मैं तुझे दूध भात का दोना दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढवा दूँगी। फिर वनवास की अवधि को समीप ही जानकर माता अत्यन्त आतुर होकर, हृदय में व्याकुल हो जाती हैं और किसी ज्योतिषी को बुला, उसके पैरों पड प्रेम में मग्न होकर मधुर वाणी से पूछती है। इसी समय भरत जी के पास से कोई राम जी के आने का समाचार लेकर आया। तुलसीदास जी कहते हैं, उसके मुख से भगवान् का आगमन सुनते ही (कौशल्या जी को ऐसी शक्ति मिली) मानो मरती हुई मछली को जल मिल गया हो।

(१९) **छेमकरी बलि......वियोगविथा बड़ि भानी।**

अरी क्षेमकरी ! (लाल चील) ! मैं बलिहार जाती हूँ। अरी मैया ! तू अपनी सुन्दर वाणी से सच-सच बता कि सीता, राम और लक्ष्मण कुशल क्षेम पूर्वक कब अपनी राजधानी अयोध्या को लौट आवेगे ? हे देवि ! तू चन्द्रमा के समान मुख वाली, कुंकुम के समान रंगवाली तथा सुन्दर नेत्र वाली है। वेदों ने तुझे सब प्रकार के शोकों से छुडाने वाली कहा है। तू दया करके हमें अपने दर्शनों का फल दे। इस प्रकार सब रानियाँ हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हैं, उन के ये स्नेहपूर्ण वचन सुनकर वह चील उनके पास होकर, सुन्दर मडल बांधकर मंडराने लगी। उसी समय आकाश में उसकी शुभ, आनन्द मंगलमयी ध्वनि, सुन सुनकर उनके हृदय की तपन शान्त हो गई। दिशा-विदिशाओं में सबके शुभ अंग फड़कने लगे। मन प्रसन्न हो गए, और दुःखदायी दशा का अन्त हो गया। तथा कौशल्या आदि चतुर स्त्रियाँ, तरह तरह की बलि और शकुन मनाती हुई, प्रेम से पुलकित शरीर हो, अपने इष्टदेवों को प्रणाम करने लगीं। इसी समय हनुमान् जी ने भरत जी का सारा मंगल-समाचार सुनाया। तुलसीदासजी कहते हैं, उस मांगलिक समाचार रूपी सजीवनी बूटी ने, उनकी अत्यन्त घोर वियोग व्यथा को नष्ट कर दिया।

कवितावली

(१) वासव वरुन .....तिलोक सोक सारु सो ।

गोसाईं जी कहते हैं कि रावण का वन, इन्द्र, वरुण और ब्रह्मा के वन से भी अधिक सुहाना था । वह मानो वसन्त का शृंगार ही था । (तात्पर्य यह कि सब वन और उपवनों का शृंगार बसन्त ऋतु है, परन्तु रावण का बाग वसन्त ऋतु की भी शोभा बढ़ाने वाला था) पुराने पत्ते (पतझड के) समय में ही गिरते, क्योंकि वहाँ वायु आते हुए डरता था, और उसके बाग का लालन-पालन रति और कामदेव के विहार स्थल के समान करता था । उत्तम बावली, तालाब और बाग की बनावट देखकर हनुमान् जी जैसे विरक्त भी राग के वशीभूत हो गये । किन्तु जब उन्होंने अशोक वृक्ष के नीचे श्री सीताजी की दशा देखी तो उन्हें वह बाग तीनों लोकों के शोक का सार सा दिखाई दिया ।

(२) माली मेघ माल.....साहसी समीर के ।

वहाँ मेघों के समूह माली हैं और बड़े बड़े विकराल भट उस बाग के रक्षक हैं । वे सब समय अमृत के सार-सदृश मीठे जल से उसे भली भांति सींचते हैं । धीर-वीर रावण के चित्त में उस बाग के प्रति अत्यन्त अनुराग था । उसे वह मेघनाद से भी अधिक दुलारा और प्राणों से भी प्यारा था । गोसाईं जी कहते हैं, यह सब जानकर, सुनकर भी श्री हनुमान् जी जानकी जी का दर्शन पाकर, श्री रामचन्द्र जी के बल से बाग में निश्शंक घुस गये । और रावण के रहते और देखते हुए भी साहसी पवनकुमार ने उस वन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

(३) बसन बटोरि .....कोटि सत सूर हैं ।

राक्षस लोग गली-गली दौड़कर, कपड़े बटोर कर और उन्हें तेल में डुबा डुबाकर आकर हनुमान जी की पूँछ में बाँधते हैं, वैसे ही खिलाड़ी हनुमान जी भी डरते हुए से, शरीर को ढीला कर करके उनकी लातों के आघात सहन करते हैं । और मन ही मन कहते हैं कि ये सब कायर हैं । बालक किलकारी मार कर, ताली बजा-बजा कर गाली देते हुए पीछे लगे हैं तथा नगाड़े, ढोल और तुरही बजाये जा रहे हैं । पूँछ ढने लगी और राक्षसों ने उसमें जहाँ तहाँ आग लगा दी, जिससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो वह विन्ध्य पर्वत की दावाग्नि हो अथवा सौ करोड़ सूर्य हों ।

(४) **लाइ लाइ .....आगि रिस लाल भो ।**

बाल समूह (पूँछ में) आग लगा-लगा कर जहाँ-तहाँ भाग गए और हनुमान् जी छोटे हो फंदे से निकल कर फिर सुमेर पर्वत से भी विशाल हो गये । तत्पश्च त् खिलाडी हनुमान् कूद कर सोने के कंगूरे पर चढ गये । और वहाँ से उसी समय रावण के राजमहल पर चढ़ कर खड़े हो गये । गोसाईं जी कहते हैं, उस समय वे आकाश मे अपनी लबी पूंछ फैलाये हुए सुशोभित थे । उसको देखकर वीर लोग थर्रा जाते थे । उस समय वे काल के समान भयकर हो गये, वे तेज के पुंज से जान पड़ते थे, मानो करोड़ो अग्नि और सूर्य हैं । उनके नख बड़े विकराल थे और वैसे ही मुख भी क्रोध से लाल हो रहा था ।

(५) **बालधी बिसाल .....अब नगरु प्रजारिहै ।**

भयंकर ज्वालमाला के साथ विशाल पूंछ भी ऐसी जान पडती, मानो लका को निगलने के लिये काल ने जीभ फैलाई है । अथवा मानो आकाश में अनेकों धूमकेतु भरे हैं । अथवा वीररस रूपी वीर ने मानो तलवार निकाल ली है । गोसाईं जी कहते हैं कि यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजली का समूह है अथवा सुमेरु पर्वत से अग्नि की भारी नदी बह चली है, उसे देखकर राक्षस और राक्षसियां व्याकुल होकर कहती हैं 'यह वन को तो उजाड़ चुका अब नगर को और जलावेगा ।

(६) **जहाँ जहाँ बहुरि .....कपि सो न लागि रे ।**

जहाँ तहाँ आग की भभक को देखकर पुकार देते हैं, अरे ! भागो-भागो । आग लग गई है, घर जल रहा है । अरे अभागे ! माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-भौजाई, लड़के-बच्चे कहाँ हैं ? अरे गवार ! भाग भाग । हाथी खोलो, घोड़ा खोलो, भैंस और बैल खोलो और बकरियों को भी खोल दो, वह सीता है, उसे जगा दो । अरे ! जागो जागो । गोसाईं जी कहते हैं कि इस दशा को देखकर, राक्षसों की नारियाँ व्याकुल होकर अपने अपने पतियों से कहती हैं कि हे प्रियतम ! हमने बार बार कहा था कि इस बन्दर के मुँह मत लगो ।

(७) **देखि ज्वाला जालु .....हांकि हनें हनुमान हैं ।**

उस धधकते हुए अग्नि समूह को देख और लोगों का हाहाकार सुन रावण

ने कहा—अरे ! इसे पकड़ो, यह सुनकर बहुत से बलवान् योद्धा त्रिशूल, बर्छी, फांसी, परिघ, मजबूत डंडे और पानी भरे हुए बर्तन लिये दौड़े और कुछ धीर लोगों ने धनुष बाण भी धारण कर रक्खे थे। श्री गोसाईं जी कहते हैं कि लंका को यज्ञकुंड समझो और वहाँ की सामग्री लकड़ी है तथा राक्षस-गण सुपारी, जौ, तिल और धान हैं। हनुमान् जी की पूंछ स्रुवा है। बलवान् शत्रुहव्य हैं और उच्च हांकरूपी स्वाहा मंत्र द्वारा हनुमान् जी हवन कर रहे हैं।

(८) गाज्यो कपि गाज.....अनलु भयावनो।

हनुमान जी धधकते हुए अग्निसमूह से सुशोभित हुए और बादल की तरह गरजे। इससे बड़े-बड़े धीर-वीर योद्धा भाग गये और रावण भी व्याकुल हो उठा और बोला, "दौड़ो दौड़ो, इसे पकड़ लो।" यह सुनकर राक्षसों की सेना दौड़ी, मानो सावन का बादल जल बरसा रहा हो। वे योद्धा लोग आग की लपटों की झपट से झुलसकर और वायु के झकोरों से घबरा कर व्याकुल हो गये। इस प्रकार उस समय वहाँ भारी भगदड़ मच गई। रावण को भी मन्त्रीगण धक्कों से धकेल कर और जबर्दस्ती ठेलकर ले चले, और कहने लगे कि हे नाथ ! आग भयंकर है, इसमें बल नहीं चलेगा।

(९) बड़ो विकरालवेषु .....वैर को बढ़ावनो।

हनुमान् जी का बड़ा भयंकर वेष देख और उनका सिंहनाद सुन मेघनाथ उठा और रावण भी चिन्तित होकर बोला, इसने तो वेग में वायु को, प्रताप में करोड़ों सूर्यों को, भयंकरता में काल को और विशालता में भगवान् वामन को भी जीत लिया। तुलसीदास जी कहते हैं, उस समय जो समझदार राक्षस थे, वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे, जिसका दूत ऐसा प्रचंड है, वह स्वामी तो अभी आयेगा। भला राम के क्रुद्ध होने पर शिव जी की भी कुशल कैसे हो सकती है ? ऐसे बांके वीर से वैर बढ़ाना व्यर्थ ही है।

(१०) पानी पानी पानी.....घने घर घालि है।

सब रानियाँ व्याकुल होकर 'पानी-पानी' चिल्लाती हैं और दौड़ी चली आ रही हैं। गज की-सी चाल से ही उनकी गति पहिचानी जाती है। वे वस्त्र लेना भूल गई हैं और मणि जटित आभूषणों को भी नहीं सभाल सकी हैं। उनके मुख सूख रहे हैं और वे कहती हैं 'क्या किसी प्रकार भी कोई हमारी रक्षा करेगा ?

गोसाईं जी कहते हैं। मदोदरी हाथ मल-मलकर और सिर धुन-धुन कर कहती है कि अहो! कल मैंने कितना कहा, फिर भी किसी ने उस पर कान नहीं दिया। बिचारे विभीषण ने भी बार-बार पुकार कर कहा कि यह वानर बड़ी भारी बला है और बहुत से घरों को चौपट कर देगा।

(११) कानन उजार्‌यो.....दाढ़ी जार सों।

वन को उजाड़ा तो उजाड़ा, उससे कुछ नहीं हुआ था, किन्तु ये बिचारे इस बन्दर को उपवन से हठात् बाँधकर ले आये, उसे बिल्कुल निडर देखकर भी किसी ने कुछ विशेष नहीं समझा और न कुल कुठार मेघनाद से कह कर किसी ने उसे छुड़ाया ही। मेरे सभी छोटे-बड़े पुत्र अन्यायी हैं, ये साँपों से खिलवाड़ करते हैं और छुरे की धार में अपनी गर्दनें रखते हैं। गोसाईं जी कहते हैं, कि मंदोदरी रो रो कर अपने को क्षीण कर रही है और कहती है कि मैंने दाढ़ीजार (मेघनाद) को बार बार पुकार कर कहा, परन्तु इसने मेरी बात भी नहीं सुनी।

(१२) रानी अकुलानी.....या ही दाढ़ीजार की।

रानियाँ सब जलती हुई घबड़ाकर दौड़ी चली जाती हैं। वे हनुमान् जी के भयंकर वेष को देख नहीं सकती। रावण की स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर रह जाती हैं और सिर धुन-धुन कर कहती हैं कि तिल भर वस्तु भी घर के बाहिर नहीं हो सकी। सब सामान जल गया, न मैंने ही निकाला और न तूने ही निकाला। सब को अपने-अपने जी की पड़ी थी। घर आँगन कौन सँभालता। मेघनाद को देखकर मदोदरी दुःख पूर्वक क्रोधित होती है और कहती है कि इसी दाढ़ीजार का बोया हुआ सब काट रहे हैं (यदि यह इस बन्दर को पकड़कर न लाता तो ऐसी आफत क्यों आती?

(१३) रावन की रानी.....विरोधु रघुनाथ सों।

राक्षसियाँ जो रावण की रानियाँ थीं, विलख विलख कर कहती हैं। हाय! हाय! कोई यह समाचार बीसभुजा और दस सिर वाले रावण को सुनावे। क्यों रे मेघनाद! क्योंरे महोदर! तुम हमें धैर्य क्यों नहीं बँधाते और अपने हाथों में आश्रय क्यों नहीं देते? क्यों रे अतिकाय! क्यों रे अकम्पन! अरे अभागे गंवारो! क्यों स्त्रियों को त्यागकर साथ से भागे जाते हो?

तुम लोगों ने व्यर्थ ही साल वृक्ष के समान बडी बड़ी भुजाएँ बढ़ा रक्खी हैं। अरे मूर्खो ? इसी बल से श्री राम जी से बैर बढ़ाया है।

(१४) हाट बाट......न लागि है।

इस प्रकार हनुमान् जी ने हाट-बाट, किले प्राकार, अटारी, घर दरवाजे और गली में दौड़ दौड़ कर भारी आग लगादी। सब लोग आर्तनाद कर रहे हैं। कोई किसी को नहीं सँभालता। सब लोग व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ भाग गए। हनुमान् जी पूँछ को घुमाकर बार बार झाडते हैं। उससे बुँदिया की भाँति चिनगारियाँ झड रही हैं। मानो लका को पिघला कर उसकी चासनी में उस बुँदिया को पागेंगे। यह देखकर राक्षसियें व्याकुल होकर कहती हैं कि अब राक्षस लोग चित्र के बन्दर से भी नहीं भिड़ेंगे।

(१५) लगी लगी आगि .....झौंसिअत झार हौं।

आग लग गई। आग लग गई। ऐसा पुकारते हुये सब लोग जहाँ-तहाँ भाग चले। न माँ लडको को सँभालती है और न पिता पुत्र को सँभ लता है। केश और वस्त्र खुल गए हैं। सब लोग नंगे होगये हैं, और धुँए की धुन्ध से अन्धे होकर लडके बूढ़े सब बार बार पानी-पानी पुकार रहे हैं। घोडे हिनहिनाते हुये भागे जाते हैं, हाथी चिघाड मारते हैं। और जो बडी भारी भीड़ लगी हुई थी, उसे धक्कों से धकेल कर पैरों से कुचले डालते हैं। सब लोग नाम ले-लेकर पुकार रहे हैं और अत्यन्त बिलबिलाते तथा अकुलाते हुए कहते हैं। बाप रे बाप ! आग की लपटें से तो झुलसे जाते हैं, तपे जाते हैं।

(१६) लपट कराल ...... अब बीस चख चाहिरे।

दसों दिशाओ में ज्वालमालाओ की भयकर लपटें फैल गई हैं। सब लोग धुएँ से व्याकुल हो रहे हैं। उस धुएँ में कौन किसे पहिचान सकता था। लोग पानी के लिए लालायित होकर बिलबिला रहे हैं; शरीर जला जाता है लोग नष्ट हुए जाते हैं और कहते हैं, भैया बचाओ ! प्रिये ! तुम भागो। हे नाथ ! हे नाथ ! भागो ! पिता जी ! पिताजी ! दौड़ो। अरे बेटा ! ओ बेटा ! भाग। तुलसीदास जी कहते हैं, सब लोग व्याकुल और परेशान होकर कह रहे हैं, अरे दसशीश रावण ! अब बीसों आँखों से अपनी करतूत देखले।

(१७) वीथिका बजार ......जाहि जाहि रोकिए।

हनुमान् जी ऐसी शीघ्रता से घूम रहे हैं कि गली गली, बाजार-बाजार, अटारी अटारी, घर-घर, द्वार-द्वार, दीवार-दीवार पर वानर ही दिखाई पड़ रहा है। ऊपर नीचे और दिशा-विदिशाओं में वानर ही दीखता, मानो वह वानर तीनों लोकों में भर गया है। आँख मूंदने से हृदय में और आंख खोलने से आगे खडा दिखाई देता है। जहाँ और किसी को पुकारते हैं वहाँ मानो हनुमान् जी ही जा धमकते हैं। लो, अब लो पहिले तो किसी ने हमारी शिक्षा नहीं मानी। इस प्रकार जिसे रोकते हैं वह सतरा (चिढ़) जाता है।

(१८) एक करे धौंस .. ..सिंधु सानो।

कोई दौड लगाते हैं, कोई कहते है, अपबाव निकालो, कोई तपस से घबडा कर पानी पीकर कहते हैं कि आते नहीं बनता। कोई बड़े संकट में पड़ गये हैं, कोई जलते ही निकाले जाते हैं, कोई खड़े-खड़े देखते हैं और कहते हैं कि 'अग्नि बड़ी भयंकर है' तुलसीदास जी कहते हैं, कोई कहते हैं कि हनुमान् जी ने खूब हाथ लगाया, किन्तु यह मूर्ख अब भी गाल बजाना नहीं छोड़ता। कोई कहता है, अरे दौडो, अरे बुझाओ। दूसरा कहता है, क्या तुम बावले हो गये हो? यह कुछ और ही तरह की आग लगी है, जिसे समुद्र और सावन का मेघ भी नहीं बुझा सकते।

(१९)—क्रोधि दसकंध .. .... भागे मुख मोरिके।

तब रावण ने क्रुद्ध होकर प्रलयकाल के मेघों को बुलाया, और वे रावण की आज्ञा से सब अपना दल बटोर कर दौड़े आये। उन से रावण ने कहा, अरे मेघो! जलती हुई लंका पुरी को शीघ्र बुझाओ। और बन्दर को बहाकर, गंभीर जल में डुबो कर मार डालो। तब मेघों के स्वामी, बहुत अच्छा महाराज यह कह कर, और प्रणाम करके चले गये। और बार-बार गरज-गरज कर मूसलाधार पानी बरसाने लगे। किन्तु जल से अग्नि और भी प्रज्वलित हो गई। और चपलता-पूर्वक चौगुनी बढ गई। तुलसीदास जी कहते है। तब सब मेघ घबड़ा कर मुँह मोड़ कर भागे।

(२०) इहाँ ज्वाल जरे.........ईसबामता विकार हैं।

बादल इधर तो अग्नि की लपटों से जले जाते हैं और उधर उनके शरीर

ग्लानि से गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क हो, सकुचाकर, पुकारने लगे। हम लोगों ने बारहों सूर्य देखे, प्रलय की आग देखी। और कई बार शेष जी के मुख की ज्वाला देखी। परन्तु कभी जल को घृत के समान हुआ नहीं सुना। यह महान् आश्चर्य हनुमान् जी ने कर दिखाया। इस प्रकार मेघों के वचन सुनकर मन्त्री-गण सिर धुनने लगे और रावण से बोले, यह सब ईश्वर की प्रतिकूलता का ही विकार है।

(२१) **पावकु पवनुपानी.....बावरे से बोल हैं।**

तब रावण ने कहा, अग्नि, वायु, जल, सूर्य, हिमाचल, यम, काल और लोकपाल (इन्द्रादि) मेरे डर से डावाँ डोल रहते हैं अर्थात् कांपते रहते हैं। हमारे स्वामी श्री महादेव जी हैं। लक्ष्मीपति (विष्णु) भी हमसे सदा शंकित रहते हैं। मैंने साहस पूर्वक महान् तपस्या करके ब्रह्माजी को भी मोल ले लिया है। अर्थात् वे भी मेरे प्रतिकूल नहीं जा सकते। तीनों लोकों में आज कोई दूसरा राजा विराजमान नहीं है, और तो क्या, बाजे-बाजे राजाओं के बेटा बेटी तक हमारे यहाँ गिरवी (थाती) हैं। माल्यवान्! तुम्हारे वचन पागलों के से हैं। यह 'ईश्वर' नाम का व्यक्ति कौन है? जो मेरे जैसे शूरवीर के प्रतिकूल जा सकता है?

(२२) **भूमि भूमिपाल.....सूरसिरताजु है।**

तब माल्यवान मन्त्री कहने लगा, पृथ्वी में जितने राजा हैं, पाताल में जितने सर्पराज हैं, जितने स्वर्ग के अधिपति और लोकपाल हैं और जितना वीरों का समाज है, हे राक्षसेश्वर! उनमें से आज ऐसा कौन है, जो मन से भी आप का अपकार करने की सोचे? किन्तु यह अग्नि तो श्री रामचन्द्र जी का क्रोध है, और वायु जानकी जी का श्वास है और देखो, वानर के रूप में यह ईश्वर की प्रतिकूलता ही है, बन्दर का तो, केवल बहाना है। इसी से जहाँ तुम्हारे समान शूरशिरोमणि और बांका वीर मौजूद है, वहीं यह बार-बार बल पूर्वक किसी प्रकार की शंका न करता हुआ लंका को जला रहा है।

(२३) **पान पकवान बिधि.....घोरे घोरे सारहीं।**

अनेक प्रकार के पेय पदार्थ, पक्वान्न, अचार सीधा (चावल, दाल आदि) और अनेक प्रकार के धान बखार में ही जल रहे हैं। करोड़ों सोने के मुकुट

पलँग, पिटारे और सिंहासन निकालने मे कहार लोग भार उठाए हुए ही जल रहे हैं। प्रबल अग्नि के बढ़ जाने से जो वस्तुएँ जहाँ निकाल कर रखीं, वहीं जल गईं तथा अग्नि की झपट और लपट घर और भंडार में भर गई। गोसाईं जी कहते है कि न तो घर बचा, न दीवार या बाजार ही बचा। हाथी हथिसार में और घोड़े घुड़साल मे ही जल गये।

(२४) हाट बाट हाटकु.....कीन्हौं राम राम सों।

बाजार तथा राह में ढेर का ढेर सोना घी के समान पिघल कर बहने लगा। अग्नि के ताप से सोने की लंकरूपी कढ़ाई खदक रही है। उसमें बलवान राक्षसरूपी अनेक प्रकार की मिठाइयों को बड़े प्रेम से पाग कर खूब ढेर लगा दिया है और अपने अग्नि रूपी पाहुने को वायु द्वारा परसवाकर हनुमान जी ने बड़े चाव से आदर पूर्वक भोजन कराया है। यह देखकर शत्रु की स्त्रियाँ गाली देकर कहती हैं, अरे! पागल रावण ने श्री राम जी से वर किया है।

(२५) रावनु सो राजरोग..... कियो है मृगांक सो।

विराट पुरुष के हृदय में रावण रूपी राजरोग बढ़ रहा था। जिससे व्याकुल होकर वह प्रतिदिन समस्त सुखों से हीन होता जाता था। देवता, सिद्ध और मुनिगुण अनेक प्रकार की औषधि करके हार गये। परन्तु न तो वह शोक रहित होता था और न चैन पाता था। तब श्रीराम जी से रस वैद्य हनुमान जी ने समुद्र के पार उतर कर और लंकारूपी शिकारे को क्षीण कर दिया। राम रूपी बूटियों के रस में, लंका के सोने और रत्नों को यत्न पूर्वक फूँक कर मृगांक (एक प्रकार का रस-औषधिविशेष) बना डाला।

(२६) बिबस छ सात.....उदधि हलोरिके।

मातः! धैर्य धारण करो। आपको ६-७ दिन बीतते कुछ मालूम न होंगे। अब शत्रु के नाश की अवधि थोड़ी ही रह गई है। भाई के सहित सूर्य कुलकेतु (रामजी) वानर सेना एकत्रित कर, समुद्र में पुल बांध यहाँ शीघ्र ही सकुशल पधारेंगे। इस प्रकार नम्र वचन कह, सीता जी को समझाकर हनुमान् जी चित्रकूट पर्वत पर चढ़ गए। और बड़े जोर से चिल्ला कर बोले 'रावण रूप गजराज के लिए मृगराज के समान जानकीवल्लभ श्री रामचन्द्र जी की जय हो।' ऐसा कह, कपिराज हनुमान जी वायु के आघात से समुद्र में हिलोरें

उत्पन्न करते हुए समुद्र के उस पार कूद गए।

(२७) **साहसी समीर सूनु .....आयो हनुमान सो।**

साहसी हनूमान ने समुद्र को लांघ और लंकारूपी सिद्ध पीठ को जान, उस में रात भर मसान सा जगाया है। उनके इस महान साहस को देख श्री सीता जी जैसी देवी प्रसन्न हुईं, और उन्हें वरदान दिया। उस समय जामवन्त कहने लगे 'वाटिका को उजाड़, अक्षय कुमार की सेना को नाश कर तथा लंका को जलाकर भानुकुल भानु (राम जी) के प्रताप रूप सूर्य की किरण के समान लोक रूपी कमल और वानर रूपी चक्रवाकों को शोक रहित करते हुए हनुमान जी आ गये, आ गये।'

(२८) **गगन निहारि.....नानागति लेत हैं।**

किलकारी के उच्च शब्द को सुनकर सब वानर और भालू आकाश की ओर देखने लगे और हनुमान जी को पहिचानकर आनन्दित और सचेत हो गये। मानो जहाज के साथ पथिकों का समाज डूबता-डूबता बच गया हो। वे सब आज अपना नया जन्म जान एक दूसरे से गले लगा कर मिलने लगे। जय जानकीश, जय जानकीश, जय लक्ष्मण, जय सुग्रीव ऐसा कहते हुए वे कौतुकी वानर कूदते हैं और समुद्र की रेती पर नाचते हैं। बलशाली अंगद मयन्द, नील-नल ये सब अपनी विशाल पूँछों को घुमाते हैं और अनेक प्रकार से मुँह बनाते हैं।

(२९) **आयो हनुमानु.....सानुकूल हैं।**

अपने प्राणों की रक्षा करने वाले हनुमान् जी को आया देख कोई तो उनसे गले मिलते हैं कोई उन की चरण धूलि लेते हैं। कोई पूँछ चूमते हैं कोई बार-बार सीता जी का समाचार पूछते हैं, जिन्हें कहने से ही हनुमान जी की सारी थकावट और व्यथा जाती रही। कोई हनुमान् जी को भूखा जान, उनके आगे कन्दमूल फल लाकर रख देते हैं। कोई फूल तोड़ कर हनुमानजी की बलशालिनी भुजाओं का पूजन करते हैं। कोई कहते हैं कि कृपा सिन्धु सीतानाथ जिसके ऊपर अनुकूल हैं उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

(३०) **सीय को सनेहु.....महामोदु मेरे मन में।**

फिर वे सब श्री जानकी जी के प्रेम और शील की तथा लंका की कथा

बड़े चाव से कहते हुऐ चले। जिससे क्षणमात्र में रास्ता समाप्त हो गया। किष्किन्धा में पहुँचने पर युवराज अंगद ने कपि समाज को बुलाकर कहा, आज सब फल खाओ'। यह सुनकर सबके सब बलपूर्वक मधुवन में घुस गये। उन्होने जिन मालियों को मारा, वे पुकारते हुए दरबार में गये और शरीर में घाव दिखाकर कहने लगे कि युवराज अंगद ने बागों को उजाड दिया और हम लोगों को मारा। तब सुग्रीव ने कहा कि तुलसी के स्वामी श्री रामचन्द्र जी की शपथ है आज मेरे मन में बड़ा आनन्द है, मालूम होता है, बानरगण कार्य कर आये हैं।

विनयपत्रिका

(१) राम राम रटु .....निरुपधि नेम निबाहैं।

हे जीभ ! तू सदा राम राम रटा कर, राम राम रटा कर, और राम राम का जाप किया कर। हे मन ! तू भी राम नाम में प्रेम रुपी नित्य नवीन मेघ के लिये हठ करके पपीहा बनजा। जैसे पपीहा, कुआँ, नदी, तालाब और समुद्र तक के जल की जरा सी भी आशा न कर केवल स्वातिनक्षत्र के जल की एक प्रेम बूँद के लिये प्यासा रहता है, ऐसे ही तू भी और सारे साधनो तथा उनके फलो की आशा न कर केवल श्री राम नाम के प्रेम रूपी अमृत की बूँद में ही प्रीति कर। पपीहे पर उसका प्रेमी मेघ गरजता है, डाँट बतलाता है, ओले बरसाता है, वज्रपात करता है, इस प्रकार कठिन से कठिन परीक्षा करके पपीहे के अनन्य प्रेम को पूर्णरूप से परखकर जब वह इस बात को जान लेता है कि ज्यों ज्यों परीक्षा लेता हूँ, त्यों त्यों इस पपीहे का प्रेम अधिकाधिक बढ़ता है (तब उसे स्वाति की बूँद मिलती है)। इसी प्रकार (भगवान की दया से परीक्षा के लिये कैसे ही संकट आकर तुझे विचलित करने की चेष्टा क्यों न करें) तू तो अनन्य मन से श्री राम नाम की ही शरण ग्रहण कर। राम नाम में ही बुद्धि लगा। राम नाम का ही प्रेमी बन। ऐसे राम नाम के आश्रित जितने भक्त हो गये हैं, अभी हैं और जो आगे होंगे, त्रिलोकी में उन्ही को बड़ा भगवान समझना चाहिए। यह राम नाम में अनन्य प्रेम करने का एकांकी मार्ग बड़ा ही कठिन है। यदि तू इस मार्ग पर चले तो क्षण क्षण में

सांसारिक सुखों की छाया लेने के लिए ठहर करदेर न करना। हे तुलसीदास तेरा भला तो अपनी ओर से श्री राम नाम में निरुपाधि अर्थात निष्कपट प्रेम के निबाहने से ही होगा।

(२) राम को गुलाम.....मुदित रहत हैं।

मैं श्रीराम जी का गुलाम हूँ, लोग मुझे 'राम बोला' कहने लगे हैं। काम यही करता हूँ कि कभी कभी दो चार बार राम नाम कह लेता हूँ। इसी से मुझे राम रोटी कपड़ो से अच्छी तरह रखते हैं। वह तो इस लोक की बात हुई आगे परलोक के लिये तो वेद पुकार ही रहे हैं कि राम नाम के प्रताप से तेरा कल्याण हो जायगा। बस, इसी से मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ। पहिले मुझे जड़ कर्मों ने अहङ्कार रूपी कठिन बेड़ियों से बाँध लिया था। वह ऐसा भयानक कष्ट था, जो सुनने में भी अत्यन्त असह्य है। मैंने दुःखी होकर पुकार कर कहा, हे आर्त और अनाथों के नाथ! हे कोसलेश! हे कृपासिन्धु! मैं बड़ा कष्ट सह रहा हूँ। यह सुनते ही श्री राम ने मुझ दीन को पापों से जलता हुआ देखकर तुरन्त कर्म व धन से छुड़ा लिया ज्यों ही उन्होंने मुझसे पूछा, तू कौन है? त्यों ही मैंने कहा, हे नाथ! मैं आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरा कहीं भी और कोई नहीं है, आपके चरणों मे पड़ा हूँ। इस पर भक्त सुखकारी परमगुरु श्री राम जी ने मेरी पीठ ठोकी, बाँह पकड़कर मुझे अपनाया और आश्वासम दिया। तबसे मैं यह (कण्ठी, तिलक, माला, रामनाम जप, अहिंसा अभेद, नम्रता आदि) भगवान का वैष्णवी बाना सदा धारण किये रहता हूँ। राम का गुलाम बने देखकर लोग मुझे नीच कहते हैं परन्तु मुझे इसके लिए कुछ भी चिन्ता या संकोच नहीं है। क्योंकि न तो मुझे किसी के साथ विवाह सगाई करनी है और न मुझे जाति पाति से ही मतलब है। तुलसीदास का बनना बिगड़ना तो श्री राम जी के रीझने खीजने में ही है। परन्तु मुझे आप के प्रेम पर विश्वास है। इसी से मैं मन में सदा सानंद रहता हूँ।

(३) हे दयालु, दीन हौं.....चरन सरन पावे।

हे नाथ! तू दीनों पर दया करने वाला है, तो मैं दीन हूँ। तू अतुलदानी है, तो मैं भिखमंगा हूँ। मैं प्रसिद्ध पापी हूँ, तो तू पाप-पूँजों का नाश करने वाला है। तू अनाथों का नाथ है तो मुझ जैसा अनाथ भी कौन है? मेरे

समान कोई दुखी नही है। और तुम्हारे समान दुःख को दूर करने वाला नहीं है। तू ब्रह्म है मैं जीव हूँ। तुम स्वामी हो, मैं सेवक हूँ। इतना ही नही तुम माता, पिता, मित्र, गुरु सभी रूपों में मेरे हित-कर्त्ता हो। तुम्हारे और मेरे मध्य तो अनेक सम्बन्ध हैं। जो तुम्हारे मन को रुचिकर हो वही सम्बन्ध मुझ से रख लीजिए। पर हे दयालु भगवान् यह तुलसीदास तुम्हारे चरणों की सेवा बड़ी कठिनता से पाता है।

(४) **दीन बन्धु..... नहिं जाई ॥**

हे रामचन्द्र जी आप दीनो के रक्षक, सुख के दाता, कृपा की मूर्त्ति और करुणा को धारण करने वाले हैं। हे स्वामी सुनिये, मेरा मन संसार के दैहिक दैविक, भौतिक आदि तीनों तापो से दग्ध हो रहा है अथवा वात, पित्त, कफ आदि त्रिदोष से व्यथित है। इसलिये पागलों के समान आचरण करता फिरता है। कभी वह मन योग-साधना में लीन रहता है तो कभी वह भोगविलास में उलझता है। कभी वह मूर्ख हठ करके वियोग के अधीन रहता है तो कभी मोह के वश हो जाता है। कभी शत्रुता का व्यवहार करता है तो अत्यन्त दया प्रगट करता है। कभी यह मन अत्यन्त दीन, मूर्ख और कगाल बन जाता है तो कभी राजाओं की तरह गर्व करने लगता है। कभी मूर्ख तो कभी पडित बन जाता है। कभी पाखडी तो कभी धार्मिक और ज्ञानी बन जाता है। हे देव! कभी ससार को धन से भरा देखता है, कभी उसे शत्रुमय पाता है और कभी स्त्री रूप में उसे देखता है। भावार्थ यह है कि जब उसकी जैसी भावना रहती है तब उसे सारा संसार वैसा ही दीखता है। यह संसार रूपी सन्निपात का असह्यनीय भयकर दुःख बिना हरि कृपा के नष्ट नहीं हो सकता। इस भयानक रोग को दूर करने के लिये यद्यपि संयम, ताप, जप, नियम, धर्मव्रत आदि अनेक औषधियाँ हैं परन्तु तुलसीदास जी का यह संसार रूपी रोग श्री रामचन्द्र जी के चरणों के प्रेम बिना दूर नहीं हो सकता।

(५) **तौ तू पछितैहै .....जानकी नाथ ॥**

हे मन तुझे हाथ मल मल कर पछताना पड़ेगा। देवताओं को भी दुर्लभ यह मानव शरीर तुझे सहज मिल गया है। तनिक विचार तो कर फिर तू इसे व्यर्थ ही क्यों खो रहा है। परमेश्वर को भुलाकर सुख प्राप्ति के सारे उपाय

उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे घी निकालने के लिये पानी को मथने का श्रम किया जाये। इसलिये यह विचार करके बुरे पथ और बुरी सगति को छोड दे और भले लोगों के साथ अच्छे शुभ मार्ग पर चल। राम के दर्शन कर उनका कीर्तन सुन और राम नाम की रट लगाता हुआ उनके गुण गान कर। हाथों में धनुष धारण किये, मुनियों के समान वस्त्रो मे सुशोभित और कमर में बाण कसे ऐसे श्री राम के रूप को हृदय में धारण कर। हे तुलसीदास ! ससार के समस्त माया मोह को त्याग कर श्री राम चन्द्र जी के चरण कमलों में शीश झुका। तू किसी प्रकार की शंका को मन मे स्थान न दे क्योंकि तुझ जैसे अनेक नीच और पापी जनों को भगवान रामचन्द्र जी ने अपनी शरण में लिया है। वे सीता पति रामचन्द्र तुझे भी अपना लेंगे।

(६) **सुनु मन मूढ़ .....राम को चेरो ।।**

हे मूर्ख मन मेरी शिक्षा को सुन। भगवान् के चरणों से विमुख होकर किसी को सुख नही मिलता। हे दुष्ट अभी सवेरा है; अर्थात् अभी भी समय है। अभी कुछ नही बिगड़ा है, भगवान् की शरण में चला जा। जब से चन्द्रमा भगवान् के मन से और सूर्य उनके नेत्रों से अलग हुए है तभी से अनेक दुःखों में ग्रस्त हैं। वे रात और दिन आकाश में थके हुए चक्कर लगाते रहते हैं। वहाँ भी उनका घोर शत्रु राहू उनका पीछा करता रहता है। यद्यपि गंगा अत्यन्त पवित्र कही जाती है और तीनों लोको में उसका यश फैला हुआ है फिर भी प्रभु के चरणो को त्याग कर उनका नित्य बहना कभी बन्द नही होता। श्री रघुनाथ जी के भजन बिना विपत्तियों का नाश नही होता। इस सिद्धान्त का सदेह वेदों ने नष्ट कर दिया है। इसलिये हे तुलसीदास ! सब प्रकार की आशा छोड़कर श्रीराम का दास बन।

(७) **कबहूं मन बिश्राम.....खनतहि जनम सिरान्यो ।**

अरे मन ! तूने कभी विश्राम नहीं लिया। अपना सहज सुखस्वरूप भूलकर दिनरात इन्द्रियों का खींचा हुआ जहाँ तहाँ विषयों में भटक रहा है। यद्यपि विषयों के सग से तूने असह्य सकट सहे हैं और तू कठिन जाल में फस गया है तो भी हे मूर्ख ! तू ममता के आधीन होकर उन्हें नही छोड़ता। इस प्रकार सब कुछ समझकर भी बेसमझ हो रहा है। अनेक जन्मों में नाना प्रकार के

कर्म करके तू उन्ही की कीचड में सन गया है। हे चित्त ! विवेक रूपी जल प्राप्त किए बिना यह कीचड कभी साफ नही हो सकती। ऐसा वेद पुराण कहते हैं। अपना कल्याण तो परम प्रभु, परमपिता और परम गुरु रूप हरि से है, पर तूने उनको प्रसन्न होकर हृदय मे कभी धारण नही किया (दिन रात विषयों के बटोरने में ही लगा रहा) हे तुलसीदास ! ऐसे तालाब से कब प्यास मिट सकती है, जिसके खोदने में ही सारा जीवन बीत गया हो।

(८) **मेरो मन हरि..... ..प्रेरक प्रभु बरजै।**

हे श्री हरि ! मेरा मन हठ नही छोडता। हे नाथ ! मै दिन रात इसे अनेक प्रकार से समझाता हूँ, पर यह अपने ही स्वभाव के अनुसार करता है। जैसे युवती स्त्री सतान जनने के समय पर्यन्त असह्य कष्ट का अनुभव करती है। (उस समय सोचती है, कि अब पति के पास नही जाऊँगी) परन्तु वह मूर्खा सारी वेदना को भूलकर पुनः उसी दुःख देने वाले पति का सेवन करती है। जैसे लालची कुत्ता जहाँ जाता है, वही उसके सिर जूते पडते हैं तो भी वह नीच फिर उसी रास्ते पर भटकता है। मूर्ख को जरा भी लज्जा नहीं आती (ऐसी ही दशा मेरे इस मन की है। विषयो में कष्ट पाने पर भी यह उन्हीं की ओर दौड़ा जाता है) मैं नाना प्रकार से उपाय करते करते थक गया। परन्तु यह मन अत्यन्त बलवान और अजेय है। हे तुलसीदास ! यह तो तभी वश मे हो सकता है, जबकि प्रेरणा करने वाले भगवान स्वयं ही इसे रोकें।

(९) **ऐसी मूढ़ता या मन की.....करहु लाज निज पन की।**

इस मन की ऐसी मूर्खता है कि यह श्रीराम भक्ति रूपी गंगा जी को छोड़ कर ओस की बूँदो से तृप्त होने की आशा करता है। जैसे प्यासा पपीहा धुएँ का समूह देखकर उसे मेघ समझ लेता है परन्तु वहाँ जाने पर न तो उसे शीतलता मिलती है और न जल मिलता है। धुएँ से आखें और फूट जाती हैं (यही दशा इस मन की है) जैसे मूर्ख बाज काच के फर्श में अपने ही शरीर की परछाईं देखकर उस पर चोंच मारने से वह टूट जायेगी, इस बात को भूख के मारे भूलकर जल्दी से उस पर टूट पडता है। (वैसे ही यह मेरा मन विषयों पर टूटा पडता है) हे कृपा के भडार ! इस कुचाल का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ? आप तो दासों की दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन ! तुलसीदास

का दारुण दुःख हर लीजिये और अपने शरणागत वत्सलतारूपी प्रण की रक्षा कीजिए।

(१०) तऊ न मेरे अघ.... ....अपना येहि पर बनि हैं।

हे श्री रामजी ! यदि यमराज सब कामकाज छोड़कर केवल मेरे ही पापों और दोषों के हिसाब-किताब का ख्याल करने लगेंगे, तब भी उनको गिन नहीं सकेंगे। (क्योंकि मेरे पापों की कोई सीमा नहीं है; (और जब वह मेरे हिसाब में लग जायेंगे तब उन्हें उधर उलझे हुये समझकर) पापियो के दल के दल छूटकर भाग जायेंगे। इस से उनके मनमें बड़ी चिन्ता होगी। मेरे कारण से अपने अधिकार में बाधा पहुँचते देखकर (भगवान के दरबार में अपने को निर्दोष साबित करने के लिये) वह आपके सामने मेरी बहुत बड़ाई कर देंगे (कहेंगे कि तुलसीदास आपका भक्त है, इसने कोई पाप नहीं किया, आपके भजन के प्रताप से इसने दूसरे पापियों को भी पाप के बन्धन से छुड़ा दिया)। तब आप हंसकर अपने भक्त यमराज का विश्वास कर लेंगे और मुझे भक्तों में शिरोमणि मान लेंगे। बात यह है कि हे कौसलेश ! जैसे-तैसे आप को मुझे अपनाना ही पड़ेगा।

(११) जानकी जीवन की......जाको दास कहै हौं।

मैं तो श्री जानकी जीवन रघुनाथ जी पर अपने को न्यौछावर कर दूंगा। मेरा मन यही कहता है कि अब मैं श्री सीताराम जी के चरणों को छोड़कर दूसरी जगह कहीं भी नहीं जाऊँगा। मेरे हृदय में ऐसा विश्वास उत्पन्न हो गया है कि अपने स्वामी श्री रामजी के चरणों स विमुख होकर मैं स्वप्न में भी कहीं सुख नहीं पा सकूंगा। इससे मैं मनको तथा इस शरीर में रहने वाले इन्द्रियादि सभी को यही उपदेश दूंगा। कानों से दूसरी बात नहीं सुनूंगा, जीभ से दूसरे की चर्चा नहीं करूंगा। नेत्रों को दूसरी ओर ताकने से रोक लूंगा, और यह मस्तक केवल भगवान को ही झुकाऊंगा। अब प्रभु के साथ नाता और प्रेम करके दूसरे सबसे नाता और प्रेम तोड़ दूंगा। इस संसार में मैं तुलसीदास जिसका दास कहाऊंगा फिर अपने सारे कर्मों का बोझा भी उसी स्वामी पर रहेगा।

(१२) सुनि सीतापति सील सुभाउ.....पावहै प्रेम पसाउ।

श्री सीतानाथ रामजी का शील स्वभाव सुनकर जिसके मन में आनन्द नही होता। जिसका शरीर पुलकायमान नही होता, जिसके नेत्रों में प्रेम के आँसू नहीं भर आते वह धूल फाँकता फिरे तो ही ठीक है। बचपन से ही पिता माता, भाई, गुरु, नौकर, मन्त्री और मित्र यही कहते हैं कि हममें से किसी ने स्वप्न मे भी श्री रामचन्द्र जी के चन्द्र-मुख पर कभी क्रोध नही देखा। उनके साथ जो उनके तीनो भाई और नगर के दूसरे बालक खेलते थे, उनकी अनीति और हानि को वे सदा देखते रहते थे और अपनी जीत में भी (उनको प्रसन्न करने के लिये) हार मान लेते थे तथा उन लोगों को पुचकार पुचकार कर प्रेम से अपना दाँव देते और दूसरो से दिलाते थे। चरण का स्पर्श होते ही पत्थर की शिला अहिल्या शाप के सन्ताप से छूट गई। उसे सद्गति दे दी, पर इस बात का तो उनके मन मे कुछ भी हर्ष नही हुआ, उल्टा इस बात का पश्चात्ताप अवश्य हुआ, कि ऋषि पत्नी से मेरे चरण क्यों लग गये? शिवजी का धनुष तोड़कर राजाओं का मान हर लिया, इससे जब परशुराम जी ने आकर क्रोध किया तब उनका अपराध क्षमा करके उल्टे श्री लक्ष्मण जी से क्षमा मंगवाई और स्वय उनके चरणो पर गिर पड़े, इतनी सहिष्णुता और कहीं नही है।

राजा दशरथ ने राज्य देने को कहकर कैकेयी के वश मे होने के कारण वनवास दे दिया और इसी ग्लानि के मारे वे मर भी गये। ऐसी बुरी माता कैकेयी का मन भी आप ऐसे संभाले रहे, जैसे कोई अपने शरीर के मर्म स्थान के घाव को देखता रहता है। अर्थात् आप सदा उसके मन के अनुसार ही चलते रहे। जब आप हनुमान जी की सेवा के वशीभूत होकर उनके उपकृत हो गये, तब उनसे कहा, कि हे पवनपुत्र! यहाँ आ, तुझे देने को तो मेरे पास कुछ भी नही है। मैं तेरा ऋणी हूँ, तू मेरा महाजन है। तू चाहे तो मुझसे लिखा पढी करवा ले। सुग्रीव और विभीषण ने अपना कपट भाव नहीं छोड़ा, परन्तु आपने तो उन्हें अपना ही लिया। भरत जी का तो सदा भरी सभा में आप सम्मान करते रहते है, उनकी प्रशसा करते-करते तो आपके हृदय में तृप्ति नही होती। भक्तों पर आपने जो-जो दया और उपकार किये

हैं, उनकी तो चर्चा चलने ही आप लज्जा से मानो गड़ जाते हैं। (अपनी प्रशसा आपको सुहाती ही नहीं) पर जो एक बार भी आपको प्रणाम करता है और शरण में आ जाता है आप सदा उसका यश वर्णन करते हैं। सुनते हैं और कह-कह कर दूसरों से गान करवाते हैं। ऐसे कोमल हृदय श्री राम जी के गुण समूहों को समझ-समझ कर मेरे हृदय मे प्रेम की बाढ आ गई है। हे तुलसीदास! इस प्रेमानन्द के कारण तू अनायास ही श्री राम के चरण-कमलों को प्राप्त करेगा।

(१३) **अबलौं नसानी.....पद कमल बसैहौं।**

अब तक तो यह आयु व्यर्थ ही नष्ट हो गई। परन्तु अब इसे नष्ट नहीं होने दूँगा श्री राम की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत गई है (मे ससार की माया रात्रि मे जग गया हूँ। अब जागने पर फिर माया का बिछौना नही बिछाऊँगा (अब फिर माया के फदे में नहीं फसूँगा। मुझे राम नाम रूपी सुन्दर चिन्ता मणि मिल गई है। उसे हृदयरूपी हाथ से कभी नही गिरने दूँगा अथवा हृदय से राम नाम का स्मरण करता रहूँगा। और हाथ से राम नाम की माला जपा करूँगा। श्री राम जी का जो पवित्र श्याम सुन्दर रूप है, उसकी कसौटी बनाकर अपने चित्त रूपी सोने को कसूँगा अर्थात् यह देखूँगा कि श्री राम के ध्यान में मेरा मन सदा लगता है कि नही। जब तक मै इन्द्रियों के वश में था, तब तक उन्होने (मुझे मन माना नाच नचा कर) मेरी बड़ी हँसी उडाई। परन्तु अब स्वतन्त्र होने पर अर्थात् मन इन्द्रियो को जीत लेने पर उनसे अपनी हँसी नही कराऊँगा। अब तो अपने मन रूपी भ्रमर को प्रण करके श्री राम जी के चरण-कमलों में लगा दूँगा। अर्थात् श्री राम जी के चरण कमलो को छोड़ कर दूसरी जगह मन को जाने ही नही दूँगा।

(१४) **केशव कहि न जाइ.....सो आपन पहिचानै।**

हे केशव! क्या कहूँ? कुछ कहा नही जाता। हे हरे! आपकी यह विचित्र रचना देखकर मन ही मन आप की लीला समझ कर रह जाता हूँ। कैसी अद्भुत लीला है कि इस संसार रूपी-चित्र को निराकार (अव्यक्त) चित्रकार (सृष्टि कर्त्ता परमात्मा) ने शून्य (माया की) दीवार पर बिना ही

रंग के, संकल्प से ही बना दिया। साधारण स्थूल चित्र को धोने से मिट जाते हैं परन्तु यह (महामायावी रचित माया चित्र) किसी प्रकार धोने से भी नहीं मिटती (साधारण चित्र जड है, उसे मृत्यु का डर नही लगता परन्तु) इसको मरण का भय बना हुआ है। (साधारण चित्र देखने से सुख मिलता है परन्तु) इस संसार रूपी भयानक चित्र की ओर देखने से दुःख होता है। सूर्य की किरणों में भ्रम से जो जल दिखाई देता है। उस जल में एक भयकर मगर रहता है, उस मगर के मुंह नही है, तो भी वहाँ जो जल पीने जाता है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, यह मगर उसे ग्रस लेता है। भाव यह है कि यह ससार सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम जनित है, जैसे सूर्य की किरणों में जल समझ कर उनके पीछे दौडने वाला मृग, जल न पाकर प्यासा ही मर जाता है। उसी प्रकार इस भ्रमात्मक संसार में सुख समझ कर उसके पीछे दौडने वालो को भी बिना मुख का मगर अर्थात् निराकार काल खा जाता है। इस ससार को कोई सत्य कहता है, और कोई मिथ्या बतलाता है, और कोई सत्य-मिथ्या से मिला हुआ मानता है। तुलसीदास के मत मे तो (ये तीनो ही भ्रम है) जो इन तीनो भ्रमों से निवृत हो जाता है, (अर्थात् सब कुछ परमात्मा की लीला ही समझता है) वही अपने असली रूप को पहिचान सकता है।

(१५) हे हरि कवन जतन.....करुनानिधान करु दाया।

हे हरे! मै किस प्रकार सुख मानूं? मेरी करनी हाथी के दिखावटी दान्तों के समान है, यह सब तो तुम भली-भाति जानते ही हो। भाव यह है कि जैसे हाथी के दान दिखाने के और तथा खाने के और होते हैं। उसी प्रकार मैं भी दिखाता कुछ और हूं और करता कुछ और ही हूँ। मैं दूसरों से जो कुछ कहता हूँ, वैसा ही स्वय करने भी लगूं तो भवसागर से बछड़े के पैर भर जल को लाघ जाने के समान अनायास ही तर जाऊं। पर तु करूँ क्या? मेरा आचरण तो कुछ और है, और कहता हूं कुछ और ही। फिर भला तुम्हारे चरणों का अथवा परमपद का आनन्द कैसे मिले? मोर देखने में तो सुन्दर लगता है, और मीठी वाणी से, अमृत से सने हुये से, वचन बोलता है, किन्तु उसका आहार जहरीला सांप है। कैसा निष्ठुर है।

करनी यह और कथनी वह ! (यही मेरा हाल है) । हे रघुवीर ! तुमको तो वे ही सन्त प्यारे हैं, जो समस्त जीवों से प्रेम करते हैं । किसी को भी देख कर तनिक भी नहीं जलते । जो तुम्हारे चरणारविन्दों के प्रेमी हैं, जो धीर बुद्धि हैं और जो अपने पराये का भेद बिल्कुल ही छोड़ चुके हैं अर्थात् सब में एक तुम्हें ही देखते हैं (फिर मैं इन गुणों से हीन कैसे तुम्हें प्रिय लगूँ ? हे रघुनाथ जी ! यद्यपि मुझमें अनन्त अवगुण हैं, और मैं संसार में ही रहने योग्य हूँ परन्तु तुम करुणा निधान हो, तनिक अपने गुणों पर विचार करके ही तुलसीदास पर दया करो ।

(१६) हे हरि ! कसन हरहु.....सुख कबहुं न पावै ।

हे हरे ! मेरे (इस संसार को सत्य और सुख रूप आदि मानने के) भारी भ्रम को क्यों दूर नहीं करते ? यद्यपि यह संसार मिथ्या है, असत् है, तथापि जब तक आपकी कृपा नहीं होती, तब तक तो यह सत्य सा ही भासता है । मैं यह जानता हूँ कि शरीर, धन, पुत्रादि विषय यथार्थ में नहीं हैं किन्तु हे स्वामी ! इतने पर भी इस संसार से छुटकारा नहीं पाता । मैं किसी दूसरे द्वारा बाँधे बिना ही अपने ही हठ (मोह) से तोते की तरह परवश बंधा पड़ा हूँ । (स्वयं अपने ही अज्ञान से बध सा गया है) । जैसे किसी को स्वप्न में अनेक प्रकार के रोग हो जायें और जिनसे मानो उसकी मृत्यु ही आ जाये और बाहर से वैद्य अनेक उपाय करते रहें, परन्तु जब तक वह जागता नहीं तब तक उसकी पीड़ा नहीं मिटती (इसी प्रकार माया के भ्रम में पड़ कर लोग, बिना ही हुए संसार की अनेक पीड़ा भोग रहे हैं, और उन्हें दूर करने के लिए मिथ्या उपाय कर रहे हैं । परन्तु तत्वज्ञान के बिना कभी इन पीड़ाओं से छुटकारा नहीं मिल सकता) वेद, गुरु, सन्त और स्मृतियाँ सभी एक स्वर से कहते हैं कि दृश्यमान जगत् असत् है (और काल्पनिक सत्ता मान लेने पर) दुःख रूप है जब तक इसे त्याग कर श्री रघुनाथ जी का भजन नहीं किया जाता तब तक ऐसी किस की शक्ति है, जो इस विपत्ति का नाश कर सके । वेद निर्मल वाणी से संसार सागर से पार होने के अनेक उपाय बतला रहे हैं, किन्तु हे तुलसीदास ! जब तक मैं और 'मेरा' दूर नहीं हो जाता, अहन्ता-ममता नहीं मिट जाती, तब तक जीव कभी सुख नहीं पा सकता ।

(१७) जो निज मन परिहरै....... बूझत बूझत बूझै।

यदि हमारा मन विकारो को छोड़ दे, तो फिर द्वैतभाव से उत्पन्न ससारी दुःख भ्रम और अपार शोक क्यो हों ? (ये सब मन के विकारों के कारण ही होते हैं) शत्रु, मित्र और उदासीन इन तीनो को मन में ही हठ से कल्पना कर रक्खी है। शत्रु को साप समान त्याग देना चाहिए, मित्र को सुवर्ण की तरह ग्रहण करना चाहिये और उदासीन की तृण की तरह उपेक्षा कर देनी चाहिए। ये सब मन की ही कल्पनाये हैं। जैसे बहुमूल्य मणि में भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकार की चीजे रहती हैं, वैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, अचर, और बहुत से लोक इस मन मे रहते हैं। भाव यह है कि छोटी सी मणि के मूल्य से जो चाहे सो खाने, पीने, पहिनने की वस्तुये खरीदी जा सकती हैं वैसे ही इस मन के प्रताप से जीव स्वर्ग-नरकादि में जा सकता है। जैसे वृक्ष के बीच में कठपुतली और सूत में वस्त्र, बिना बनाये ही सदा रहते हैं, उसी प्रकार इस मन में भी अनेक प्रकार के शरीर लीन रहते हैं। जो समय पाकर प्रकट हो जाते हैं। इस मनके विकार कब छूटेंगे कि जब श्री रामचन्द्र जी की भक्ति रूपी जल से धुल कर चित्त निर्मल हो जायेगा। तब अनायास ही सत्य रूप परमात्मा दिखलाई देगे। किन्तु तुलसीदास जी कहते हैं, कि इस चैतन्य के विलास रूप जगत् का सत्य तत्व परमात्मा समझते-समझते ही समझ में आयेगा।

(१८) कबहुँ सो कर सरोज.........चाहत तुलसीदास छाया।

हे रघुनाथ जी ! हे स्वामी ! क्या आप कभी अपने उस कर कमल को मेरे माथे पर रक्खेगे, जिससे आपने परतत्रता वश एक बार आपका नाम लेकर पुकार करने वाले आर्तभक्तों को अभय कर दिया था। जिस कर कमल से महादेव जी का कठोर धनुष तोड कर आपने महाराज जनक का सदेह दूर किया था, और जिस कर कमल से गुह निषाद को उठाकर भाई के समान बड़े प्रेम से हृदय से लगा लिया था। हे कृपालु ! जिस कर कमल से आपने जटायु गिद्ध को पिता के समान पिण्डदान देकर अपना परम धाम दिया था और जिस हाथ से अपने दास के लिए बाली को मार कर, सुग्रीव को बंदरों के कुल का राजा बना दिया था।

जिस कर कमल से अपने भयभीत शरणागत विभीषण का राज्यभिषेक किया था और जिस हाथ से धनुष बाण चढा, राक्षसों का विनाश कर देवत ओं को अभयदान दिया था। तथा जिस कर कमल की शीतल और सुखदायक छाया, पाप, सताप और माया का नाश कर डालती है। हे प्रभु ! आपके उसी कर कमल की छाया यह तुलसीदास दिन रात चाहा करता है।

(१९) **सकुचत हौं अतिराम..... जो जानि सिरावौं।**

हे कृपानिधि राम जी ! मुझे बडा संकोच हो रहा है। मैं किस प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ ? जो कुछ भी मै करता हूँ सो सभी धर्म के विरुद्ध होता है। फिर नाथ ! आपको मैं क्यों अच्छा लगने लगा ? यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि सम्पूर्ण जड चेतन भगवान् श्री हरि का ही रूप है, पर मैं उस हरि स्वरूप को भूल कर भी नहीं देखता। मै तो अपने नेत्र रूपी पतंगों को कामिनी रूपी अग्नि की शिखा में जलने के लिये भेजता हूँ। मैं यह समझता हूँ और दूसरों को भी समझाता हूँ कि कानो की सार्थकता तो आपकी कथा सुनने में ही है। परन्तु मैं उन कानों से सदा दूसरों के दोष सुन-सुनकर, उन्हें हृदय में भरता और संतप्त होता हूँ। जिस जीभ से आपके गुणानुवाद गाकर बिना ही परिश्रम के परम सुख प्राप्त कर सकता हूँ ; उस मुख से (जीभ से) मेंढक की भाँति दूसरों की निन्दाये रट रट कर अपना जन्म खो रहा हूँ। मैं यह बात सबको सिखाता फिरता हूँ कि हृदय को अत्यन्त शुद्ध कर लो, तभी उसमें भगवान् श्री हरि विराजेगे, किन्तु मै स्वयं अपने हृदय में अभिमान, मोह और मद आदि दुष्टो की मण्डली को बसाता हूँ। जिस दुर्लभ मनुष्य शरीर को धारण कर भक्त-जन भगवान् के परम पद को प्राप्त करने की साधना करते हैं, मै उसे व्यर्थ ही खो रहा हूँ। घर में सोने के घड़ों मे अमृत भरा रक्खा है पर उसे छोड कर आकाश में कुँआ खुदवाता हूँ। मन से, कर्म से और वचन से मैने जो पाप किये हैं, उन्हें तो मैं यत्न कर कर बडे जतन से छिपाता हूँ और यदि दूसरों की प्रेरणा से अथवा ईर्ष्यावश कही कोई शुभ कर्म बन गया है तो उसे जनाता फिरता हूँ। ब्राह्मणो के साथ द्रोह करना तो मानो मेरे हिस्से में ही आ गया है। जबर्दस्ती ही सब से वैर बढ़ाता हूँ। इतना बुद्धि भ्रष्ट होने पर भी

में सब सन्तो के बीच बैठकर अपनी प्राप्ति के विलास को गिनाता हूँ। उनमें उत्तम ज्ञानी सन्त बनता हूँ। चारों वेद, शेषनाग और शारदा आदि का निहोरा करके, उनसे यदि मैं अपने दोषों का वर्णन कराऊँ, तब भी हे प्रभो! मेरे वे दोष, सौ कल्प तक भी समाप्त न होंगे। फिर भला मैं एक मुख से उनका कहाँ तक वर्णन करूँ? यदि मैं अपनी करनी पर विचार करूँ तो क्या मैं आपकी शरण में आने का साहस भी कर सकूँ? परन्तु श्री राम जी बड़े ही कोमल और असीम शील हैं, इसी बात का बल मन को दिखाता रहता हूँ। हे प्रभो! इस तुलसीदास के पास ऐसा एक भी गुण नहीं है, जिससे स्वप्न में भी आपको रिझा सके। किन्तु हे नाथ! आपकी कृपा के आगे यह संसार सागर गाय के खुर के समान है। यह जानकर जी में संतोष कर लेता हूँ (कि आपकी कृपा से मैं विपरीत आचरण वाला होने पर भी संसार-सागर से सहज ही मे तर जाऊँगा।)

(४०) कैसे देउँ नाथ हि खोरि.........देहु तुलसिहि छोरि।

स्वामी को कैसे दोष दूँ? हे हरे। मेरा मन तुम्हारी भक्ति को छोड़ कर कामनाओ में फंसा हुआ इधर उधर भटका करता है, अपने पुजाने में तो मेरा बड़ा प्रेम है (सदा यही चाहता हूँ कि लोग मुझे ज्ञानी भक्त मान कर पूजा करें) किन्तु तुम्हे पूजने मे मेरी बहुत ही कम प्रीति है। दूसरो को तो खूब सीख दिया करता हूँ, पर स्वयं किसी की शिक्षा नहीं मानता। मेरी ऐसी मूर्खता है। जिन जिन पापो को मैंने बड़े अनुराग से किया था, उन्ह तो हृदय मे छिपा कर रखता हूँ परन्तु कभी किसी अच्छे संग के प्रभाव से (बिना-ही प्रेम) मुझ से जो कोई अच्छे काम बन गये हैं उन्हे दुनियाँ को निहोरा कर सुनाता फिरता हूँ। भाव यह है कि मुझे कोई भी पापी न समझ कर सब लोग बड़ा धर्मात्मा समझे। कभी जो कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेत में पड़े हुये अन्न के दानों की तरह बटोर बटोर कर रख लेता हूँ। किन्तु हे दयानिधान! दम्भ जबर्दस्ती हृदय में घुसकर उसे बाहर निकाल फेंकता है। भाव यह है कि दम्भ बढ़ कर थोड़े बहुत सुकृत को भी नष्ट कर देता है। इस के सिवाय लोभ मेरे मन को आशा रूपी रस्सी से इस तरह नचा रहा है, जैसे बाजीगर बंदर के गले में डोरी बाँध कर उसे मन माना नचाता है। (इतने-

पर भी मैं दम्भ स) एक बड़े पण्डित की तरह परमवैराग्य के तत्व की बातें बना बनाकर सुनाता फिरता हूँ। इतना दम्भी होने पर भी मैं तुम्हारा दास कहलाता हूँ। लाज को तो मानो मैं घोलकर ही पी गया हूँ। हे रघुनाथ जी ! तुम उदार हो, इस निर्लज्जता पर ही रीझ कर तुलसी का बधन काट दो। (मुझे भवबधन से मुक्त कर दो)।

(२१) **ऐसो को उदार.....करै कृपानिधि तेरो।**

संसार मे ऐसा कौन उदार है जो बिना ही सेवा किये दुखियों पर (उन्हें-देखते ही) द्रवित हो जाता है ? ऐसे एक श्री राम चन्द्र जी ही हैं, उनके समान दूसरा कोई नही। बडे बड़े ज्ञानी मुनि, योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करके भी जिस परमगति को नही पाते, वह गति प्रभु रघुनाथ जी ने गीध और शबरी तक को दे दी और उसको उन्होंने अपने मन में कुछ बहुत नही समझा। जिस सम्पति को रावण ने शिव जी को अपने दसो सिर चढ़ा कर प्राप्त किया था, वही सम्पति श्री राम ने बड़े ही संकोच के साथ विभीषण को दे डाली। तुलसीदास कहते हैं कि अरे मेरे मन ! जो तू सब तरह से सब सुख चाहता है, तो श्री राम जी का भजन कर। कृपानिधान प्रभु तेरी सभी कामनायें पूरी कर देंगे।

(२२) **रघुपति भगति करत.....निरमूल न जाहीं।**

श्री रघुनाथ जी के भक्ति करने में बड़ी कठिनता है। कहना तो सहज है पर उस का करना कठिन है। इसे वही जानता है, जिससे वह करते बनगई। जो जिस कला में चतुर है, उसी के लिये वह सरल और सदा सुख देने वाली है। जैसे छोटी सी मछली तो गंगा जी की धारा के सामने चली जाती है। पर बड़ा भारी हाथी बह जाता है। (क्योंकि मछली की तरह उसमें तैरना नहीं जानता)। जैसे यदि धूल में चीनी मिल जाये तो उसे कोई भी जोर लगाकर अलग नही कर सकता किन्तु उसके रस को जानने वाली एक छोटी सी चींटी उसे अनायास ही अलग करके पा जाती है।

जो योगी दृश्यमात्र को अपने पेट में रख (ब्रह्म में माया को समेट कर परमेश्वर रूप कारण में कार्य रूप जगत् का लय करके) अज्ञानरूपी निद्रा को त्याग कर सोता है, वही द्वैत से, आत्यन्तिक रूप से मुक्त हुआ पुरुष भगवान्

के परम पद के परमानंद की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है। इस अवस्था में शोक, मोह, भय, हर्ष, दिनरात और देशकाल नही रह जाते। एक सच्चिदानंद घन प्रभु ही रह जाता है) किन्तु हे तुलसीदास ! जब तक इस दशा की प्राप्ति नही होती, तब तक संशय का समूल नाश नहीं होता।

(२३) **यों मन कबहुं..... प्रभु मूरति कृपामई है।**

मेरा मन आपसे ऐसा कभी नही लगा, जैसा कि वह कपट छोड़कर, स्वभाव से ही निरन्तर विषयों में लगा रहता है। जैसे मैं पराई स्त्री को ताकता फिरता हूँ, घर घर के पाप भरे प्रपंच सुनता हूँ, वैसे न तो कभी साधुओं के दर्शन करता हूँ और न गंगाजी की निर्मल तरगों के समान श्री राम जी की गुणावली ही सुनता हूँ। जैसे नाक अच्छी अच्छी सुगन्ध के रस के आधीन रहती है और जीभ छः रसों से प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान् पर चढ़ी हुई माला के लिए और जीभ भगवान् प्रसाद के लिए कभी ललक-ललक कर नही ललचाती। जैसे यह अधम शरीर चंदन, चद्रवदनी युवती, सुन्दर गहने और कोमल वस्त्रों को स्पर्श करना चाहता है, वैसे श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों का स्पर्श करने के लिए यह कभी नही तरसता। जैसे मैंने शरीर, वचन और हृदय से बुरे बुरे देवों और दुष्ट स्वामियों की सब प्रकार से सेवा की, वैसे उन रघुनाथ जी की सेवा कभी नही की। जो तनिक सेवा से अपने को खूब ही कृतज्ञ मानने लगते हैं और एक बार प्रणाम करते ही (अपार करुणा के कारण) सकुचा जाते हैं। जैसे इन चंचल चरणों ने लोभवश, लालची बन कर द्वार द्वार ठोकरें खाई हैं वैसे ये अभागे श्री रामजी के पुण्य आश्रयों में जाकर कभी स्वप्न में भी नही थके। (स्वप्न में भी कभी भगवान् के पुण्य आश्रयों में जाने का कष्ट नही उठाया) हे प्रभो ! इस प्रकार मेरे सभी अंग आपके चरणों से विमुख हैं। केवल इस मुख से आप के नाम की ओट ले रक्खी है और वह इसलिए कि तुलसी को एक यही निश्चय है, कि आपकी मूर्ति कृपामयी है (आप कृपा सागर होने के कारण, नाम के प्रभाव से मुझे अवश्य अपना लेंगे)।

(२४) **कबहुंक हौं यह रहनि.....हरि भगति लहौंगो।**

क्या मैं कभी इस रहनी (रहने के ढंग से) से रहूँगा ? कृपा कृपालु श्री

रघुनाथ जी की कृपा से कभी मैं सन्तों का सा स्वभाव ग्रहण करूंगा। जो कुछ मिल जायेगा, उसी में संतुष्ट रहूँगा। किसी से (मनुष्य या देवता से) कुछ भी नही चाहूंगा। निरन्तर दूसरों की भलाई करने में ही बना रहूँगा। मन, वचन और कर्म से यम-नियमों का पालन करूंगा। कानो से अति कठोर और असह्य वचन सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई क्रोध की आग में न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सब में समबुद्धि रहूँगा और मन को शाँत रखूंगा। दूसरो की स्तुति निन्दा कुछ भी न करूँगा (सदा आपके चिन्तन मे लगे हुए मुझ को दूसरों की स्तुति-निन्दा के लिए समय ही नही मिलेगा।) शरीर संबन्धी चिन्तायें छोड़कर सुख और दुःख को समान भाव से सहूंगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास इस उपर्युक्त मार्ग पर रह कर कभी अविचल हरि भक्ति को प्राप्त करेगा ?

(२५) नाहिन आवत आन.........चाहै तरन तरोसो।

श्री राम नाम के सिवाय मुझे दूसरे किसी साधन पर भरोसा नहीं होता। इस कलियुग में सभी साधन रूपी वृक्षों में केवल परिश्रम रूपी फल ही फले से दिखाई देते है अर्थात् उन साधनों में लगे रहने से केवल श्रम ही हाथ लगता है, फल कुछ नही होता। तप, तीर्थ, व्रत, दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे सो करे। किन्तु इन सब कर्मों का फल पाने पर ही जान पडेगा, यद्यपि वेदों ने पत्तल भर भर कर फलों को परोसा है। भाव यह है कि वेदों में इन कर्मों की बड़ी प्रसंशा है परन्तु कलियुग इन्हे सफल ही नही होने देगा तब फल कहाँ से मिलेगा ? शास्त्र की विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं किन्तु उनमे असली कार्य की सिद्धि नहीं होती। योग सिद्धियो के साधनो मे सुख स्वप्न मे भी नही है। क्रिया जानने वालों के अभाव से इस साधन में भी रोग और वियोग प्रस्तुत हैं (शरीर रोगी हो जाता है जिसके फलस्वरूप प्रियजनों से बिछोड़ हो जाता है) काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह ने मिलकर ज्ञान और वैराग्य को तो हर सा लिया है और सन्यास लेने पर तो यह मन ऐसा बिगड जाता है जैसे पानी के डालने मे कच्चा घड़ा गल जाता है। मुनियों के अनेक मत हैं (छः दर्शन हैं) और पुराणों मै नाना प्रकार के पंथ देखकर जहाँ तहाँ झगड़ा सा ही जान पड़ता है। गुरू ने मेरे लिए राम

भजन को ही उत्तम बताया है। और मुझे भी सीधे राजमार्ग के समान वही अच्छा लगता है। हे तुलसी ! विश्वास और प्रेम के बिना जिसे बार बार पच पचकर मरना हो, वह भले ही मरे किन्तु ससार सागर से तरने के लिए तो राम नाम ही जहाज है जिसे पार होना हो वह इस पर चढकर पार हो जाये।

(२६) जाके प्रिय न राम बैदेही.....एतो मतो हमारो।

जिसे श्री राम—जानकी जी प्यारे नही, उसे करोडो शत्रुओं के समान छोड़ देना चाहिए। चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्यारा क्यो न हो ? (उदाहरण के लिए देखिए) प्रह्लाद ने अपने पिता (हिरण्यकशिपु को, विभीषण ने अपने भाई (रावण) को, भरत जी ने अपनी माता (कैकयी) को, राजा बलि ने अपने गुरू (शुक्राचार्य) को, और ब्रज गोपियो ने अपने अपने पतियों को भगवत्प्राप्ति मे बाधक समझकर त्याग दिया, परन्तु ये सब आनन्द और कल्याण करने वाले हुए। जितने सुहृद और अच्छी तरह पूजने योग्य लोग हैं वे सब श्री राम जी के ही सम्बन्ध और प्रेम से माने जाते हैं, बस अब अधिक क्या कहूँ। जिस अञ्जन के लगाने से आखे ही फुट जायें, वह अञ्जन ही किस काम का ? हे तुलसीदास ! जिसके कारण (जिसके सग के उपदेश से) श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार स अपना परमहितैषी, पूज्य और प्राणो से भी अधिक प्यारा है। हमारा तो यही मत है।

(२७) कौन जतन विनती करिये.....कत पचि पचि मरिये।

हे नाथ ! मैं किस प्रकार आपकी विनती करूँ ? जब अपने नीच आचरणों पर विचार करता हूँ और समझता हूँ, तब हृदय में हार मानकर डर जाता हूँ। (प्रार्थना करने का साहस ही नही रह जाता) हे हरे ! जिस साधन से आप मनुष्य को दास जानकर उस पर कृपा करते हैं, उसे तो मैं हठ पूर्वक छोड़ रहा हूँ और जहाँ विपत्ति के जाल में फँसकर दिनरात दुःख ही मिलता है उसी कुमार्ग पर चला करता हूँ। यह जानता हूँ, कि मन वचन और कर्म से दूसरों की भलाई करने से संसार सागर से तर जाऊँगा, पर मैं इससे उलटा ही आचरण करता हूँ। दूसरो के सुख को देखकर बिना कारण ही ईर्ष्याग्नि से जला जा रहा हूँ। वेद पुराण सभी का यह सिद्धान्त

है, कि खूब दृढता पूर्वक सत्संग का आश्रय लेना चाहिए। किन्तु मै अपने अभिमान, अज्ञान और ईर्षा के वश कभी सत्संग का आदर नहीं करता। मै तो सतों से सदा द्रोह ही किया करता हूँ। बात तो यह है कि मुझे सदा वही अच्छा लगता है। जिससे ससार-सागर मे ही पड़ा रहूँ। फिर हे नाथ ! आप ही कहिए, कि मैं किस बल से ससार के दुःख दूर करूँ ? जब कभी आप अपने दयालु स्वभाव स मुझ पर पिघल जायेंगे तभी मेरा निस्तार होगा। नहीं तो नहीं। क्योंकि तुलसीदास को और किसी का विश्वास ही नहीं है, फिर वह किस लिये दूसरे साधनों में पचपच कर मरे।

(२८) **राम कह चलुत.....होऊ राम अनुकूलारे।**

अरे भाई ! राम राम, राम राम कहो चलो। नहीं तो कहीं संसार की बेगार में पकडे जाओगे। तो फिर छूटना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। (राजा की बेगार मे दो चार दिनों में छूटा जा सकता है पर संसार का जन्म-मरण का चक्र तो ज्ञान न होने तक सदा चलता ही रहेगा। यदि राम नाम जपता चला जायेगा तो माया जन्म विषयरूपी शत्रु तुझे बेगार में न पकड़ सकेंगे। क्योंकि राम के दास पर राम की माया नहीं चलती)। कुटिल कर्मचन्द (हमारे पूर्व जन्मकृत पापकर्मों के प्रारब्ध) ने बिना ही मोल के (ससार चक्र की कर्मानुसार, स्वाभाविक गति के अनुसार) ऐसा बुरा खटोला (भजन हीन तामस प्रधान मनुष्य शरीर) हमें दिया है कि जिसके पुराना तो बांस (अनादि कालीन अविद्यामोह) लगा है, जिसके साज सब अटसंट हैं (चित्त की तामस विषयाकार वृत्तियाँ हैं, जिन के कारण शरीर से बुरे कर्म होते हैं, मनुष्य कुमार्ग में जाता है) जो सडा हुआ तिकोन है (केवल अर्थ, काम और तकाम धर्म की प्राप्ति मे ही लगा हुआ है, जिसे मोक्ष का ध्यान ही नही है)। जिसके (उठाकर चलने वाले) कहार विषम हैं और काम के मद में मतवाले हो रहे हैं (शरीर को चलाने वाली पाँच इंद्रियाँ हैं, कहारों की जोड़ी होनी चाहिए पांच होने से जोडी नहीं है, इसलिए विषम हैं, एक से नहीं हैं, और पाँचों ही इन्द्रियाँ विषम भोगों के पीछे मतवाली हो रही हैं। कुकर्मो के कारण जब शरीर और मन ही तामस—विषयाकार हैं तब इन्द्रिया विषयों से हटी हुई कैसें हों ? और वे पाँव बटोर कर, अर्थात् समान पैर रखकर नहीं चलते

(इंद्रियाँ अपने अपने विषयों की ओर दौड़ती हैं) इससे कभी ऊँचे और कभी नीचे चलने से धक्के और झटके लग रहे हैं। इस खींचतान में बड़ा ही दुःख हो रहा है। (कभी स्वर्ग या कीर्ति आदि की इच्छा से धर्मकार्य में, कभी भोगों की प्राप्ति के लिए संसार के विविध व्यवसायों में, कभी काम वश होकर स्त्रियों के पीछे। सो भी समान भाव से नहीं, शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध इन अपने अपने विषयों द्वारा कभी ऊँचे और कभी नीचे जाती हैं. फलस्वरूप जीव दुःख पाता है)। रास्तों में काँटे बिछे हैं, कंकड़ पड़े हैं (विषैली बेलें लपेटती हैं और झाड़ियाँ उलझा लेती हैं, इस प्रकार जगह जगह रुकना पड़ता है। परमात्मा को भुलाकर सांसारिक विषयों के घने जंगल में दौड़ने वाली इन्द्रियों को विषयनाश रूपी काँटे, प्रतिकूल—विषयरूपी कंकड़, घर परिवार की ममतारूपी लपेटने वाली बेलें और कामनारूपी उलझन है, जिनसे पदपद पर रुककर दुःख भोगते हुए चलना पड़ता है)। फिर ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं, त्यों त्यों अपना घर दूर होता चला जा रहा है। (संसार के भोगों में ज्यों ज्यों मन फंसता जाता है, त्यों त्यों भगवत्प्राप्ति रूपी निज निकेतन दूर हो जाता है) और कोई राह बताने वाला भी नहीं है (विषयी पुरुष सन्तों का संग ही नहीं करते, फिर उन्हें सीधा परमार्थ का मार्ग कौन बतावे? संगवाले तो उलटा ही मार्ग बतालाते है)। मार्ग बड़ा कठिन है (विषयों के झाड़, झंखाड़ों और पहाड़, जंगलों से परिपूर्ण है) साथ मे भजनरूपी मार्ग व्यय (राह खर्च) भी नहीं है यहाँ तक कि अपने गाँव का नाम तक भूल गये हैं भूल कर भी परमात्मा का नाम नहीं लेते और परमात्मा स्वरूप पर विचार नहीं करते, अतएव भगवान् की कृपा बिना इस शरीर के द्वारा तो परमपदरूपी घर पहुँचना तो असंभव ही है), इसलिए हे श्री राम जी ! अब आप ही कृपा करके इस तुलसीदास के जन्म मरण रूपी संसार-भय को दूर कीजिए।

(२९) मन पछितै है ......विषय भोग बहु घीते।

अरे मन ! (मनुष्य जन्म की आयु का यह) सुअवसर बीत जाने पर तुझे पछताना पड़ेगा। इसलिये इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर, कर्म, वचन और हृदय से भगवान् के चरणकमलों का भजन कर। सहस्रबाहु और रावण आदि महाप्रतापी राजा भी बलवान् काल से नहीं बच सके। उन्हें भी मरना पड़ा।

जिन्होने 'हम हम' करते हुये धन और धाम संभाल सभाल कर रक्खे थे, वे भी अन्त समय यहाँ से खाली हाथ ही चले गये। (एक कौड़ी भी साथ न गई) पुत्र, स्त्री आदि को स्वार्थी समझ इन सब से प्रेम न कर। अरे अधम ! जब ये सब तुझे अन्त समय में छोड़ ही देगे, तो तू इन्हें अभी से क्यों नही छोड़ देता ? (इन का मोह छोड कर अभी से भगवान् मे प्रेम क्यों नही करता ?) अरे मूर्ख ! अज्ञान की निद्रा से जाग। अपने स्वामी रघुनाथ जी से प्रेमकर और हृदय से (सांसारिक विषयं से सुख की) दुराशा को त्याग दे (विषयों में सुख है ही नही, तब मिलेगा कहाँ से ?) हे तुलसीदास ! जैसे अग्नि बहुत सा घी डालने से नहीं बुझती (अधिक प्रज्वलित होती है) वैसे ही यह कामना भी ज्यो ज्यो विषय मिलते हैं त्यो त्यों बढती जाती है। यह तो सन्तोष रूपी, जल से ही बुझ सकती है)।

(३०) **जो मन भज्यो चहै .....सपनेहुँ नाहिन डरू।**

हे मन ! यदि तू भगवान् रूपी कल्पवृक्ष का सेवन करना चाहता है, तो विषयो के विकार को छोड़कर सार रूप श्री राम नाम का भजन कर और जो मैं कहता हूँ, उसे अब भी कर (अभी तक कुछ बिगड़ा नही)। समता, सन्तोष, निर्मल विवेक और सत्सग इन चारों को दृढतापूर्वक धारण कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह अभिमान एव राग औ द्वेष को बिलकुल ही छोड़ दे। इनका लेश मात्र भी न रहे। कानो से भगवत्कथा सुन, मुख से राम नाम जपा कर, हृदय मे श्रीहरि का ध्यान किया कर, मस्तक से प्रणाम तथा हाथों से भगवान् की सेवा किया कर। नेत्रो से कृपा सागर चराचर विश्वमय महाराज जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन किया कर। यही भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है और इसी से भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शुभ व्रत का आचरण कर। हे तुलसीदास ! यही शिवजी का बतलाया हुआ मार्ग है, इस कल्याणमय मार्ग पर चलने से स्वप्न में भी भय नही रहता। (मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर अभय हो जाता है)।

(३१) **कबहुँ देखा इहौ हरिचरन .....तुलसीदास चाहत मरन।**

हे हरे ! क्या कभी आप अपने उन पवित्र चरणो का दर्शन करायेंगे जो समस्त क्लेशो और कलियुग में सभी पापों के नाश करने वाले और सम्पूर्ण

कल्याण के कारण हैं। जिन चरणों का रंग शरद् ऋतु में उत्पन्न, सुन्दर और तुरन्त के खिले हुये लाल लाल कमलों के समान है। जिन्हें श्री लक्ष्मी जी अपनी सुन्दर हथेलियों से दबाया करती हैं और जो अतुलनीय शोभामय हैं। जो गंगा जी के पिता है (जिन चरणों से गंगा की उत्पत्ति हुई है), कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के प्यारे हैं तथा जिन्होंने कपट-ब्रह्मचारी का रूप धारण कर राजा बलि को छला है, जिन्होंने गौतम ब्राह्मण की स्त्री अहल्या तथा राजा नृग को शाप से छुड़ा कर परमसुख दिया है और हिंसक निषाद के सारे दुःख और घोर पाप दूर कर दिये। सिद्ध, देवता और मुनियों के समूह जिनकी सदा वन्दना किया करते हैं जो सभी को सुख और शरण देने वाले हैं। एक बार भी जिनका हृदय में ध्यान करने से भक्त स्वयं तर जाता है तथा दूसरों को तारने वाला बन जाता है। हे कृपासागर चतुर रघुनाथ जी! आप शरणागतों के दुःख दूर करने वाले हैं। यह तुलसीदास अब आपके उन चरणों के दर्शन की आशा रूपी प्यास के मारे मर रहा है। (शीघ्र ही अपने चरण-कमलों के दर्शन कराइये और रक्षा कीजिये)।

(३२) मोहि मूढ मन .....नींद भरि सोयो।

इस मूर्ख मन ने मुझे खूब ही छकाया। हे करुणामय! सुनिये, इसी के कारण मैं बार बार जगत् में जन्म जन्म कर दुःख से रोता फिरा। शीतल और मधुर अमृतरूप सहज सुख (ब्रह्मानन्द) जो अत्यन्त निकट ही रहता है, (आत्मा का स्वरूप ही सत् चित् और आनन्दघन है) मैंने इस मन के फेर में पड कर उसे यों भुला दिया मानो वह बहुत ही दूर हो। मोह वश अनेक प्रकार से परिश्रम कर मुझ मूर्ख ने व्यर्थ ही पानी को बिलोया (विषयरूपी जल को मथ कर उससे परमानन्दरूपी घी निकालना चाहा) यद्यपि मन में यह जानता था कि कर्म कीचड़ है (उसमें पड़ते ही सब ओर से मलिनता छा जायेगी) फिर भी चित्त को उसी में सान कर प्यास बुझाने के लिये मैं कुटिल मल से ही मल को धोना चाहता हूँ। प्यास लग रही है, पर मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि श्री गंगा जी को छोड कर, बार-बार व्याकुल हो आकाश निचोड़ता फिरता हूँ (सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये दुःख रूपी विषयों में भटकता हूँ) हे नाथ! मैंने अपना एक भी दोष आप से नहीं छिपाया है, अतः अब इस तुलसीदास पर

कृपा कीजिये। मुझे बिछौना बिछाने ही सारी रात बीत गई। परन्तु हे नाथ! कभी नींद भर नहीं सोया (सुख प्राप्ति के उपाय करते-करते ही जीवन बीत गया। आपको प्राप्त कर पूर्ण काम हो, बोध रूप सुख की नींद में कभी नहीं सो पाया, अब तो कृपा कीजिये)।

(३३) **राम राम! बिनु रावरे ....बहुरि पूंछिये पांचो।**

हे महाराज श्री रामचन्द्र जी! आपको छोड़ कर मेरा सच्चा हितैषी और कौन है? मैं स्वामी सहित सभी से कहता हूँ, उसे सुन समझकर यदि कोई और बड़ा हो तो दूसरी लकीर खींच दीजिये। शरीर और जीवात्मा के सम्बन्ध के जितने सखा या हितू मिलते है वे सब असत् मिथ्या टांकों से मिले हुये हैं अर्थात् संसार के सभी सम्बन्ध मायिक हैं। विचार करने पर ये सखा केले के पेड़ के सार के समान हैं (जैसे केले के पेड को छीलने पर छिलके ही निकलते हैं, वैसे ही संसार के सारे सम्बन्धी भी सार हीन अर्थात् केवल अज्ञान जनित ही हैं, ये वैसे ही सुन्दर जान पड़ते हैं जैसे मणि सुवर्ण के सयोग से बीच-बीच क्षुद्र काँच भी शोभा देता है। हे बाप जी! इस दीन की लिखी—'विनय-पत्रिका' को तो आप स्वयं ही पढ़िये। (किसी दूसरे से न पढ़वाइये)। तुलसी ने इसमें अपने हृदय की सच्ची बातें ही लिखी हैं, इस पर पहिले आप अपने दयालु स्वभाव से 'सही' बना दीजिये। फिर पीछे पंचों से पूछिये।

(३४) **पवन सुवन! रिपुदवन .....परतीति पराधीन की।**

हे पवन कुमार! हे शत्रुघ्न जी! हे लखनलाल जी! अपने अपने अवसर से मौका लगते (ही) इस दीन तुलसी को याद करना। मैं आप लोगों की बलैया लेता हूँ। आपके कृपापूर्वक ऐसा करने से इस सर्वथा दुर्बल दास की आशा पूरी हो जायेगी (श्री रघुनाथ जी मेरी पत्रिका पर 'सही' कर देंगे)। राजदरबार में सच्चे साधुओं को तो सभी अच्छे कहते हैं, इसमें क्या विशेषता है? किन्तु यदि आप लोग इस शरण रहित दीन की सिफारिश कर देंगे तो इसको भगवान् की शरण मिल जायेगी, आप को पुण्य होगा और सुन्दर यश फैलेगा, आप के स्वामी आप पर कृपा करेंगे (क्योंकि वह दीनों पर दया करने वालों पर स्वभावतः प्रसन्न हुआ करते हैं, आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों

बन जायेंगे। इसलिये अवसर देखकर (मौका पाते ही) इस पतित तुलसी की बात सुधार देना। शरणागत वत्सल कृपालु रघुनाथ जी से मुझे पराधीन के प्रेम की रीति की हद को समझा कर कह देना।

(३५) मारुति मन, रुचि.....परी रघुनाथ सही है।

प्रसंग—भगवान् श्री राम का दिव्य दरबार लगा है। प्रभु जगज्जननी श्री जानकी जी के सहित अलौकिक रत्न जटित राज्यसिंहासन पर विराजमान हैं। हनुमान् जी प्रेम मग्न हुये नाथ की ओर अनन्य दृष्टि से निहारते हुये चरण दबा रहे हैं। भरत जी, लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी अपने अपने अधिकारानुसार सेवा में संलग्न हैं। उसी समय तुलसीदास जी की 'विनय पत्रिका' पहुँची। तुलसीदास जी की प्रार्थना सब को याद थी। भक्त प्रिय मारुति श्री हनुमान् और भरत ने धीरे से लक्ष्मण से कहा, कि बड़ा अच्छा मौका है। इस समय तुलसीदास की बात छेड़ देनी चाहिये। लक्ष्मण जी ने उनका रुख देखकर प्रभु की सेवा में 'विनय पत्रिका' पेश कर दी।

पद्य का भाव यह है—हनुमान् जी और भरत जी का मन और उनकी रुचि को देखकर लक्ष्मण जी ने भगवान् से कहा कि हे नाथ! कलियुग में भी आपके एक दास की आपके नाम से प्रीति और प्रतीति निभ गई (देखिये यह उसकी सच्ची 'विनय पत्रिका' भी आई है) इस बात को सुनकर सारी सभा एकमत होकर बोल उठी कि हाँ! यह बात सर्वथा सत्य है। हम लोग भी उसकी रीति जानते हैं। गरीब नवाज भगवान् श्री राम जी की उस पर बड़ी कृपा है। स्वामी ने सब के देखते देखते, उस गरीब की बांह पकड़ कर उसे अपना लिया है। सब की बात सुनकर श्री राम जी ने मुस्कराकर कहा, कि हाँ! यह सत्य है। मुझे भी उसकी खबर मिल गई है। (श्री जनकनन्दिनी (सीता) जी भी कई बार कह चुकी होंगी। क्योंकि गोसाईं जी पहिले उनसे प्रार्थना कर चुके है)। बस, फिर क्या था—अनाथ तुलसी की रची हुई, 'विनय-पत्रिका' पर रघुनाथ जी ने अपने हाथ से 'सही' कर दी। अपनी बात बनने पर मैंने भी परम प्रसन्न होकर भगवान् के चरणों में सिर टेक दिया अर्थात् सदा के लिये शरण हो गया।

दोहावली

(१) एक भरोसो.....चातक तुलसीदास।

एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा और एक ही विश्वास है। एक राम रूपी श्यामघन (मेघ) के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है।

(२) जौं घन बरसै.....तऊ तिहारी आस।

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामरूपी मेघ! चाहे तुम ठीक समय पर बरसो (कृपा की वृष्टि करो) चाहे जन्म भर उदासीन रहो, अर्थात् कभी न बरसो, परन्तु इस चित्त रूपी चातक को तो तुम्हारी ही आशा है।

(३) चातक तुलसी के.....—घटैगी आनि।

हे चातक! तुलसीदास के मत से तो तू स्वांति नक्षेत्र में बरसा हुआ जल भी न पीना। क्योंकि प्रेम की प्यास का बढते रहना ही अच्छा है, घटने से तो प्रेम की प्रतिष्ठा ही घट जायेगी।

(४) रटत रटत रसना .....नूतन रुचि रंग।

अपने प्यारे मेघ का नाम रटते रटते चातक की जीभ लग गई (कमजोर पड़ गई) और प्यास के मारे सब अंग सूख गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि तो भी चातक के प्रेम का रंग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है।

(५) चढत न चातक..... ताते नाप न जोख।

चातक के चित्त में अपने प्रियतम मेघ का दोष कभी आता ही नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसीलिये प्रेम के अथाह समुद्र का कोई नाप तोल नहीं हो सकता। (उस की थाह नही लगाई जा सकती)।

(६) बरसि परुष.....चातकहि चूक।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मेघ (बादल) कठोर ओले बरसाकर भले ही चातक के पंखों के टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर प्रेम के प्रण में चतुर चातक को अपने प्रेम का प्रण निबाहने में कभी भूल नहीं करनी चाहिये।

(७) उपल बरषि.....कबहुँ दूसरी ओर।

मेघ कड़क-कड़क कर गर्जता हुआ ओले बरसाता है। और कठोर बिजली भी गिरा देता है। इतने पर भी प्रेमी पपीहा मेघ को छोड़कर क्या किसी

दूसरी ओर ताकता है ?

(८) पबि पाहन.....तुलसी रागहि रीझि ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मेघ बिजली गिराकर, ओले बरसाकर, बिजली चमका कर, कड़क-कड़क कर, वर्षा की झड़ी लगाकर और आँधी के झकोरे देकर अपना बड़ा भारी रोष प्रकट करता है। परन्तु चातक को अपने प्रियतम का दोष देखकर क्रोध नहीं होता (उसे दोष दीखता ही नहीं) बल्कि इसमें भी वह अपने प्रति मेघ का अनुराग देखकर उस पर रीझ जाता है।

(९) मान राखियो मांगियो.....जौ चातक मत लेहु ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि आत्म सम्मान की रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतम से प्रेम का नित्य नवीन होना बढ़ना। ये तीनों बातें तभी शोभा देती हैं जब चातक के मन का अनुकरण किया जाये।

(१०) तुलसी चातक ही... . ...निबाहत नेम ।

तुलसीदास जी कहते हैं, प्रेम के मान की रक्षा करना और प्रेम को भी निबाहना चातक ही को शोभा देता है। स्वाँति नक्षत्र में भी यदि बूँद (मेघ की ओर निहारते हुए उसके मुख में सीधी न पड़ कर) टेढ़ी पड़ती है, वह उसका निरादर करके प्रेम के नियम को निबाहना है (चोंच को टेढ़ी करने में दूसरी ओर ताकना हो जायेगा और इससे उसके प्रेम में दोष आयेगा, इसलिये वह प्यासा रह जाता है, परन्तु मुँह टेढ़ा नहीं करता। दूसरी बात यह है कि वह टेढ़ी चोंच करके पीता है तो उसका मान घटता है, वह माँगता नहीं है प्रेमी है, देना हो तो सीधे दो नहीं तो न सही)।

(११) तुलसी चातक.....घूंटक पानि ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक एक ही (अद्वितीय) माँगने वाला है और बादल भी एक ही (अद्वितीय) दानी है। बादल इतना देता है कि पृथ्वी के सब बर्तन (झील, तालाब आदि) भर जाते हैं परन्तु चातक केवल एक घूंट ही पानी लेता है।

(१२) तीन लोक तिहुं काल.....सुनि दूसरे नाथ ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि तीनों लोकों में और तीनों कालों में कीर्ति तो केवल अनन्य प्रेमी चातक के ही भाग्य में है, जिसकी दीनता संसार में किसी

भी दूसरे स्वामी ने नहीं सुन पाई।

(१३) प्रीति पपीहा.....कनौड़ो दानि।

पपीहा और मेघ के प्रेम का परिचय प्रत्यक्ष ही नये ही ढंग का है। याचक (मंगता) तो संसार भर का ऋणी होता है, परन्तु इस प्रेमी पपीहे ने दानी मेघ को अपना ऋणी बना डाला है।

(१४) नहिं जाँचत नहिं.....वारिद बिन देइ।

पपीहा न तो मुँह से माँगता है, न जल का संग्रह करता है और न सिर झुका कर लेता ही है (ऊँचा सिर किये ही 'पिउ, पिउ' की टेर लगाया करता है) ऐसे मानी मांगने वाले चातक को मेघ के सिवाय और कौन दे सकता है?

(१५) को को न ज्यायो.....प्रेम पहिचानि।

जगत मे इस जीवनदाता दानी मेघ ने किस किस को नहीं जिलाया? परन्तु मेरे प्रेमी याचक चातक के प्रेम को पहिचान कर तो यह मेघ उल्टा स्वय उसी का ऋणी हो गया।

(१६) साधन सांसति .....बुझि बुधि काहु।

साधन मे सभी कष्ट सहते हैं, और फल की प्राप्ति सभी के लिए सुख-दायिनी होती है परन्तु तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक की सी रीझ (प्रेम) और मेघ की सी बुद्धि किसी बिरले ही बुद्धिमान की होती है। (चातक मेघ पर इतना रीझा रहता है कि कष्ट सहने पर भी उससे प्रेम बढ़ता ही है और मेघ की ऐसी बुद्धि गुणज्ञता है, कि वह दाता होकर भी ऋणी बन जाता है)।

(१७) चातक जीवनदायक हि.....प्रीति प्रतीति।

चातक के जीवनदाता मेघ के प्रेम की सुन्दर रीति तो उसके जीवन काल में ही देखने में आती है, परन्तु (अनन्य प्रेमी) चातक का प्रेम एवं विश्वास तो अज्ञेय है। तुलसीदास जी कहते हैं, वह तो किसी के देखने में नहीं आता, (अर्थात् उसका प्रेम तो मरते समय भी बना रहता है)।

(१८) जीव चराचर जहं.....सहज सनेह।

संसार में जितने चर-अचर जीव हैं, मेघ उन सभी का हितकारी है, परन्तु तुलसीदास जी कहते हैं कि उस मेघ के प्रति स्वाभाविक प्रेम तो एक चातक के ही चित्त में बसा हुआ है।

(१९) **डोलत बिपुल बिहंग.....भुवन दस चारि।**

वन में बहुत से पक्षी डोलते हैं, और वे पोखरियों का जल पिया करते हैं, परन्तु हे नित्य नवीन प्रेमी चातक ! चौदहों लोकों को अपने निर्मल यश से उज्ज्वल तो एक तू ही करता है।

(२०) **मुख मीठे मानस.....भुवन भरि तोर।**

कोयल, मोर और चकोर मुँह के तो मीठे होते हैं, परन्तु कीट, सर्प आदि जीवों को खाते, बोली मीठी बोलते है) अर्थात् मन के बड़े मैले होते हैं। परन्तु हे नवल चातक ! विश्वभर में निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है।

(२१) **बास बेष बोलनि.... .बिसद बिसाल।**

तुलसीदास जी कहते हैं कि हंस का निवास स्थान (मानसरोवर), वेष (रंगरूप) बोल चाल और (नीर-क्षीर का विवेक रखने वाला तथा मोती चुगने की टेक वाला) मन सभी सुन्दर हैं, परन्तु प्रेम की कीर्ति तो सबसे बढ़कर विस्तृत और निर्मल चातक की ही है।

(२२) **प्रेम न परखिअ.....बरसै मेह।**

संसार के लोग (विषयीजन) कहते हैं, कि चातक पापी है, क्योंकि मेघ ऊसर तक में बरसता है (परन्तु चातक के मुँह मे नही बरसता) पर मेघ इससे यह शिक्षा देता है कि प्रेम की परीक्षा कठोरता से नहीं करनी चाहिये, (अर्थात् कठोरता में प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिए, कही कहीं कठोरता में ही प्रेम का प्रकाश होता है। चातक पापी नही है, महान् प्रेमी है, उसका प्रेम का यश मेघ की कठोरता से बढ़ता है।

(२३) **होई न चातक.....प्रेम पथ गूढ़।**

न तो चातक ही पापी है, और न जीवनदाता मेघ ही मूर्ख है, तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रहलाद की दशा पर विचार करके समझो, कि प्रेम का मार्ग कितना दुर्गम है (प्रहलाद को पद पद पर कष्ट मिलता है और भगवान उसके कष्ट को जानते हुये भी बहुत विलम्ब मे प्रकट होते हैं, यह उनकी प्रेमलीला ही है)।

(२४) **गरज आपनी.....जानि सुजानि।**

तुलसीदास जी कहते हैं कि अपनी अपनी गरज सभी को होती है। और

उसी गरज (कामना) को हृदय मे रखकर लोग जहाँ तहाँ गरज करते (सबसे विनती करते) फिरते हैं। परन्तु चतुर (अनन्य प्रेमी) चातक तो एक मेघ को ही सर्वोत्तम दानी समझ कर केवल उसी का याचक बना।

(३५) **चरग चग्.....पुहुमी नीर।**

तुलसीदास जी कहते हैं कि बाज के पंजे में फसने पर चातक को अपने प्रेम के नियम की पीड़ा (चिन्ता) होती है। उसे यह चिन्ता नहीं होती कि मैं मर जाऊँगा। पर इस बात की बड़ी पीड़ा होती है कि बाज के द्वारा मारे जाने पर) मेरी हड्डियाँ और पंख (स्वातिनक्षत्र के मेघ-जल में न पड़कर, पृथ्वी के साधारण जल में पड़ेंगे।

(२६) **बध्यो बधिक परयो.....लगी न खोंच।**

किसी बहेलिये ने चातक को मार दिया, वह पुण्य सलिला गंगा जी में गिर पड़ा। परन्तु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातक ने चोच को उलट कर ऊपर उठा लिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक के प्रेम रुपी वस्त्र पर मरते दम तक कोई खोंच नहीं लगी (वह कहीं से फटा नही)।

(२७) **अंड फोरि कियो.....बाहिर वारि।**

किसी चातक ने अंडे को फोडकर उसमें से बच्चा निकाला! परन्तु अंडे के छिलके को पानी में पड़ा हुआ देखकर उस (प्रेमराज्य) के चतुर चातक ने तुरत उसे पंजे से पकड़ कर जल से बाहिर फेंक दिया।

(२८) **तुलसी चातक देत.....वारिधर धार।**

तुलसीदास जी कहते हैं, कि चातक अपने पुत्र को बार बार यही शिक्षा देता है। कि हे तात! (मेरे मरने पर) प्यारे मेघ की धारा को छोड़ कर अन्य किसी जल से मेरा तर्पण न करना।

(२९) **जिअत न नाई.....मांगेउ अरध जल।**

जीते जी तो चातक ने प्यारे मेघ को छोड़कर दूसरे के सामने गर्दन नहीं झुकाई। (याचना नहीं की) और मरते समय भी गगा जल में अर्घजली तक न माँगी (मुक्ति का भी निरादर कर दिया)।

(३०) सुनु रे तुलसीदास.....जल स्वाँति को।

कवि स्वयं को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे तुलसीदास सुन चातक को जल की प्यास नही है उसे तो केवल प्रेम की प्यास है। यही कारण है कि तमाम बरसात के चारों महीने के जल को छोड़कर वह केवल स्वाति नक्षत्र के ही जल का पान करता है।

(३१) जाचै बारह मास.....नेहि नेह मन।

चातक बारहों मास पी-पी की रट लगा कर जल की याचना किया करता है, परन्तु वह केवल स्वाति नक्षत्र के जल का ही पान किया करता है। तुलसीदास कहते हैं कि चातक के ऐसे व्यवहार से यह ज्ञात होता है कि चातक इस प्रकार अपने प्रेमी मेघ का मन रखता है जिससे मेघ को यह कहने का अवसर न मिले कि चातक स्वार्थी है जब प्यास लगती है तभी मुझे आवाज देता है। वर्ष के अन्य दिनों में मुझे याद भी नहीं करता।

(३२) तुलसी के मत.....बारह मास।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरे मतानुसार तो चातक केवल प्रेम का ही प्यासा है। क्योंकि तमाम दुनियाँ जानती है कि चातक बारहों महीने मेघ का याचक बने रहने पर भी स्वाति नक्षत्र के जल का ही पान करता है।

(३३) आल बाल..... अनुकूल।

चातक के हृदय रुपी मोतियो की क्यारी में प्रेम रूपी वृक्ष की जल लगी है। स्वाति नक्षत्र के जल से हृदय में लगी हुई यह प्रेम रूपी वृक्ष की जड़ भली-भाँति सींची जाये जिससे कि प्रेम का वृक्ष फल फूलकर ऊँचा उठता जाये। भावार्थ यह है कि ज्यों ज्यों स्वाति नक्षत्र के जल का चातक द्वारा पान किया जायेगा त्यों त्यों उनका मेघ के प्रति प्रेम बढ़ता जायेगा। इसलिए चातक प्यासा रह जायेगा किन्तु मुँह टेढ़ा नहीं करेगा। यदि चातक टेढ़ी चोंच करके जल ग्रहण करेगा तो इससे चातक का आत्म सम्मान घटेगा। चातक तो प्रेमी है, भिखारी नहीं है, इसलिये प्रेम का दान वह सीधी तरह चाहता है।

इति